सहायक पुस्तकों और पत्रोंकी नामावली।



पत्र-सम्पादन कलाके लिखनेमें निम्न लिखित पुस्तकों और समाचारपत्रोंसे सहायता ली गयी है।

(१) Edwin L. Shuman—Practical Journalism

(२) John L. Given—Making a Newspaper.

(३) Julian Ralph—The Making of a Journalism.

(४) Sachindra Bose—Fifteen Years in America.

(५) Studies in Journalism (Madras)

(६) Peril and Patriotism.

(७) Lord Morley—Literature and Journalism (A Lecture, Press Conference 1909.)

(८) Journalism in England—(सन् १६०६ ई० में "पंजाबी" में प्रकाशित एक लेख)

(६) Universities of Journalism (Modern Review, March, 1921)

(१०) Journalism [illegible]tion (Indian Review Madras.)

कारण यह है कि मेशीनगन बमके गोले और हवाईजहाज़ किसी देशको सिर्फ जीतनेमें सहायक होते हैं, परन्तु प्रेस अर्थात् छापेखानेसे प्रत्येक देशके निवासियोंके हृदय पर विजयकी छाप लगायी जा सकती है। मेशीनगन, बमके गोले और हवाईजहाज़ोंमें किसी देश अथवा जातिकी सभ्यताके बनाने, बिगाड़ने, और मिटानेकी शक्ति नहीं होती है, मेशीनगन और हवाईजहाज़ोंका काम सर्वेव टिकाऊ नहीं रहता है। परन्तु प्रेसका काम चिरस्थायी होता है क्यों कि मनुष्योंके विचार पलटनेकी शक्ति प्रेसमें ही होती है यही कारण है कि वर्त्तमान सभ्यता पर प्रेस का प्रभाव अधिक है। यूरोपियन महासंग्राम के समय यूरोपका प्रत्येक राष्ट्र अपने वैरियोंके हवाई जहाज़ और मेशीनगनोंके आक्रमणसे जितना चौकन्ना रहता था उससे कहीं अधिक चौकन्ना अपने घरके प्रेस और समाचार पत्रों से रहता था। उस समय देखा गया था कि यूरोपके अनेक राष्ट्र अपने दुश्मनके हमले रोकनेकी जितनी चेष्टा करते थे उससे कहीं अधिक प्रेसके नियन्त्रण करनेका प्रयत्न करते थे। क्योंकि उस समय उनकी हार और जीतका बहुतसा हिस्सा प्रेसके ऊपरही निर्भर था। अतएव आजकल रेल, तार, आदिकी भांति प्रेसके बिना भी काम चलना कठिन है।

यहाँ पर यह प्रश्न स्वभावतःही उठता है कि सबसे पहिले मुद्रायन्त्र अर्थात् छापेखानेका आविष्कार किस देशमें हुआ है? किसी किसीका मत है कि पहले समयमें भारतवर्षमें भी यह कला बीज रूपसे थी। अङ्गरेजोंके प्रथम गवर्नर जनरल वारेन

हेस्टिङ्गज़के समयमें काशीमें एक छापाखाना गड़ा हुआ मिला था जिसके विषयमें अनुमान किया गया था कि एक हजार वर्षसे कमका न था। अङ्गरेजी भाषाके प्रसिद्ध विश्वकोष "इन्साइक्लोपीडिया"से पता लगता है कि चीन देश वासियोंने मुद्रण—कला-का सबसे पहले आविष्कार किया है। * चाहे मुद्रण—कलाका

* चीन देशमें छापेखानेका प्रथम आविष्कार छठवीं शताब्दीमें हुआ था। कहा जाता है कि चीनमें पहले पहल महीन लसदार मिट्टीकी लेई समथलकर उसपर अक्षरोंके आकार खोदे जाते थे और फिर वही मिट्टीका समथल तख्ता गरम करके सुखाया जाता था। इसके पीछे एक लोहेकी चद्दरमें लेई (जो राल, मोम और चूनेकी बनी होती थी) लगा कर वे मिट्टीके अक्षर जमाये जाते थे और पीछे फिर सुखाकर किसी प्रकार कार्य्यमें लाये जाते थे। एक बार कार्यमें लाये हुए अक्षर पुनः काम न दे सकते थे। देखो—Encyclopaedia Britannica Vol v page 662)

महाभारतके वन पर्वमें लिखा हुआ है कि श्रीकृष्णके समयमें जब राजा शाल्वने द्वारावती पुरी पर आक्रमण किया उस समय वहां यह प्रबन्ध किया था कि "नच मुद्रोऽभिनर्याति नैवान्तः प्रविशेदपि" (महाभारत वन पर्व) अर्थात् बिना राजकीय नामकी मोहरछापके कोई नगरसे निकल नहीं सके और कोई भीतर भी न आवे इससे यह स्पष्ट है कि छापेकी मुद्रासे एक जगहके अक्षर दूसरी जगह उतारे जाते थे। मुद्रा राक्षस नाटकमें भी जो विशाखदत्तका बनाया हुआ है राक्षस नामाङ्कित मुद्राका वर्णन है। इस तरह और भी कितने ही प्रमाण मिलते हैं परन्तु इन प्रमाणोंके आधार पर यह कदापि दावा नहीं किया जा सकता कि वर्तमान समयमें जिस प्रकार छापेखानेका प्रचार है उस भांति पहले भारतवर्षमें भी था। प्राचीनताके ही भी दावा करें वर्त्तमान मुद्रण—कलाका श्रेय यूरोपियनोंको है।

पहले चीन देशमें ही पता लगा हो पर इसमें सन्देह नहीं कि छापेखानेकी वर्त्तमान विधिका श्रेय यूरोप ही को है।

सन् १०४१ और४८ ईसवीके बीचमें चीनके एक आदमीने अलग अलग अक्षर बनाकर छापनेकी युक्ति निकाली थी। सन् १२८५ ई०में यूरोपमें भी लकड़ीके ठप्पे द्वारा छापनेका काम जारी हुआ। किसी किसीका यह भी मत है कि यूरोप वालोंने यह कला चीनियोंसे सीखी थी। इस विचारसे देखा जाय तो मुद्रण-कलामें भी एशिया—यूरोपका गुरु है। काले रङ्गने पहले मुद्रण-कलामें भी गोरे रङ्ग पर छाप लगाई है। अस्तु सन् १४३६ ई०में ट्रान्सबर्ग जर्मनीके निवासी गटनबर्ग और हारलेम नगरके निवासी कास्टरने लकड़ीके अक्षर बनाकर छापने-की युक्ति निकाली थी। परन्तु इन दोनोंमें किसने पहले निकाली इस विषयमें मत-भेद है। वर्त्तमान समयमें अनेक नये यंत्रोंके आविष्कार करनेका श्रेय जर्मनोंको प्राप्त हुआ है। अतएव इस मुद्रा-यंत्रके आविष्कारका यश भी बहुमतसे जर्मनीको है। सन् १४७१ ई०के लगभग इङ्गलेण्डमें मुद्रण-कलाका प्रचार हुआ था, तबसे वहाँ इसकी बराबर उन्नति हो रही है।

प्रारम्भमें छापेखानेका आजकलकासा ढङ्ग न था। न तो आजकलकीसी मशीनें थीं और न ऐसे सुन्दर अक्षर होते थे।—और न इतनी जल्दी छपायी होती थी।— यहाँ छापेखानेका शृङ्खलाबद्ध इतिहास लिखनेका प्रयोजन नहीं है। केवल इतनाही कहना है कि नवम्बर सन् १८१४ ई०में कैनिङ्ग नामक एक सज्जन

ने जलकी भापकी शक्ति द्वारा कलोंसे छापनेके यन्त्रका आविष्कार किया था। इस यंत्र द्वारा एक घण्टेमें ११०० प्रतियाँ एक ओरसे छपती थीं इस यंत्रको कुछ और ठीक करने पर इसके द्वारा १८०० प्रतियां एक घण्टेमें एक ओरसे छपने लगीं। सन् १८१५ ई०में कैनिङ्गने एक नये यंत्रका आविष्कार किया जिसमें एक घण्टेमें ७५० प्रतियां दुपीठी छपने लगीं। इसके अन्तर कूपर और एपिल गेट नामक दो सज्जनोंने एक और भी उत्तम यंत्र निकाला। उसके द्वारा एक घण्टेमें ५००० प्रतियां छपने लगीं।—फिर अनेक शिल्प विद्या विशारदोंने मुद्रण—कलाको अपनी प्रतिमा और बुद्धिके बल से इतनी उन्नति दी है कि अब एक घण्टेमें एक यन्त्र द्वारा लाखों प्रतियों तक छप सकती हैं।

हिन्दुस्तानमें मुद्रण-कलाका प्रवेश ईस्ट इण्डिया कम्पनीके समयसे हुआ है। सन् १७८६ ई० में ईसाई पादरियोंने बङ्गाल प्रान्तके श्रीरामपुर नामक स्थानमें एक प्रेस खोला था। उस समय जिस प्रकार ईस्ट इण्डिया कम्पनीको अपने व्यापार और साम्राज्य बढ़ानेकी लालसा लगी हुई थी उसी प्रकार ईसाई पादरियोंको अपने मतके प्रचारकी धुन थी। अतएव श्रीरामपुरमें बाइबिलके छापने और प्रचार करनेके लिये छापाखाना खोला गया था। पीछे भारतवर्षके अन्य स्थानोंमें भी प्रेसकी प्रधानता हुई।

सन् १७१२ ई०के पूर्व गुजराती और नागरी (हिन्दी)के छापेखानोंका कहीं पता भी न था। सन् १६७० ई०में भीमजी

पारक नामक एक वैश्यने बम्बईके गवर्नरके द्वारा एक पत्र डाइरेक्टरोंके बोर्डको भेजा, जिसमें यह लिखा हुआ था कि यदि सरकार नागरी अक्षरोंको ढाल दे तो मैं एक प्रेस खोलकर कार्य्य करनेको तैयार हूं। उक्त पत्रमें यह भी प्रार्थना की थी कि सरकार किसी सुयोग्य व्यक्तिको भेजकर इस कार्यमें सहायता करें। इस प्रार्थनाके अनुसार कोर्ट आव डाईरेक्टरोंने ८००) वार्षिक वेतन पर एक आदमीको एक मेशीन, थोड़ेसे अङ्गरेजी अक्षर और कुछ प्रेसके सामान सहित भारतवर्षमें भेजा था। परन्तु वह मनुष्य अक्षर ढालना नहीं जानता था, अतएव भीमजीको आरम्भमें हताश होना पड़ा। भीमजी पारेखने पुनः कोर्ट आव डाईरेक्टर्सकी सेवामें निवेदन-पत्र भेजा और सन् १६७८ ई०में डाइरेक्टरोंने अक्षर खोदने एवं ढालनेके कार्य्य में एक और प्रवीण व्यक्तिको भेजा, जिसकी सहायतासे भीमजीने नागरी अक्षर बना कर ढाले। यहींसे हिन्दी भाषाके छापेखानोंकी नींव पड़ी। जिस तरहसे नागरी अक्षरोंके बनानेवाले भीमजी पारिख थे, उसी भांति गुजराती अक्षरोंके बनाने वाले पारसी जातिके फरदुनजी महरवान थे। उन्होंने सन् १८१२ ई०में गुजराती अक्षर बनाकर "समाचार" नामक प्रेस खोला था। आज कल प्रायः अङ्गरेजी भाषाके बड़े बड़े छापेखानोंमें समाचार पत्र और पुस्तकें लीनो टाइप मेशीनमें कम्पोज होती हैं। हमारे देशमें भी अनेक छापेखानोंमें इस मेशीनका उपयोग किया जाता है। हमारे देशमें भी कितने ही अङ्गरेजी भाषाके समाचार पत्र इस मेशीनमें कम्पोज

होते हैं क्योंकि हाथसे कम्पोज करनेकी अपेक्षा, इस मेशीन द्वारा कम्पोज करनेमें अत्यन्त सुगमता होती है। भारतवासियोंके हृदय-सम्राट् लोकमान्य तिलकने इस बातकी जांच की थी कि लीनो-मेशीनमें व्यवहार करने योग्य * मराठी अक्षर बन सकते हैं या नहीं, लोकमान्यजीको इसमें सफलता प्राप्त हुई। उन्होंने मराठीके लीनो-टाईप आविष्कार कर डाले और विलायतके लीनो-टाईप-फाउण्डरोंने उनकी आविष्कृत प्रणालीका अनुमोदन भी किया पर वैसी लीनों-मेशीनें न मिल सकीं। क्योंकि विलायतके कारीगरोंने सिर्फ एक ही ऐसी मेशीन ढालना स्वीकार नहीं किया। तिलक महोदयने यह उद्योग कमसे कम १७-१८ वर्ष पहले किया था। उस समयके भारतमें और आज कलके भारतमें बड़ा भेद है। १७-१८ वर्ष पहले जो हिन्दी संसार था वह अब हिन्दी संसार भी नहीं रहा है यदि इस समय मराठी और हिन्दीमें लीनो टाईप मेशीन काममें लानेकी चेष्टा की जाय तो सम्भव है उसमें कुछ सफलता प्राप्त हो।

---

* मराठी अक्षर देवनागरी अक्षरोंसे भिन्न नहीं होते हैं। मराठी भाषाके ग्रन्थ, समाचारपत्र अब देवनागरी अक्षरोंमें ही छपते हैं जिन्हें महाराष्ट्र भाषामें बालबोध अक्षर कहते हैं। घरेलू कामोंमें ये लोग मुड़िया अक्षरोंका व्यवहार करते हैं जो देवनागरी लिपिसे कुछ भिन्न होते हैं।

विदेशी समाचार पत्रोंका संक्षिप्त वृत्तान्त ।

—————

"Before the century closes schools of Journalism will be generally accepted as a feature of specialized higher education, like schools of law or medicine—"

(Joseph Pulitzer, Edior of
Newyork World.)

अङ्गरेजी भाषामें प्रेसके दो अर्थ हैं "मुद्रण-कला" और "समाचार पत्र" जिनको सीदी साधी भाषामें यह कह सकते हैं कि छापाखाना और अखबार। सबसे पहले समाचार पत्रोंका जन्म किस देशमें हुआ है ? इस विषयमें निश्चित रूपसे कुछ कहा नहीं जा सकता है किसी किसीका मत है कि पहले पहले चीन देशसे "किङ्गचाऊ" नामक समाचार पत्र निकलता था। लगभग पन्द्रहसौ वर्ष तक यह अखबार चला था। किन्तु अभी कुछ दिन हुए कि वहांके नये राष्ट्रपतिने उसको बन्द कर दिया है। बारहवीं शताब्दीमें इस पत्रके एक सम्पादकके कान और जीभ काट लिये गये थे। बाद उसका शिर भी काटा गया। "किपव्ह" नामक एक और पत्र सन् ६०१ ई०में चीनकी राजधानी पेकिनसे निकला था-ये ढाई शताब्दी चलकर बन्द हो

गया। पीछे सन् १३११ ई०में यह पत्र पुनः प्रकाशित हुआ और सन् १८८२ ई० तक दिनमें तीन बार प्रकाशित होता था, आज कल यह भी बन्द हो गया है। चीनकी राजधानी पेकिनसे "पेकिन गज़ट" एक वर्षसे निकलता है। सुना जाता है कि अब तक "पेकिन–गज़ट"के सत्तरह सम्पादक फांसी पर लटकाये जा चुके हैं। चीन सरकारके विरुद्ध कुछ लिखते ही उनका शिर उतार लिया जाता है।

चीनके पीछे पन्द्रहवीं शताब्दीमें यूरोपके कई देशोंमें समाचार पत्रोंका जन्म हुआ था जिनमें मुख्य जर्मनी और इटली कहे जाते हैं। प्रथम एक छोटे परचे पर संग्राम तथा व्यापार सम्बन्धी हस्त-लिखित समाचार नगरके किसी विशेष भागमें सुनाये जाते थे जिसका श्रोताओंको एक गजैटा देना पड़ता था। यह एक प्रकारका छोटासा सिक्का था। इसी सिक्केके नाम पर पीछेसे समाचार पत्रोंको भी गज़टा कहने लगे, जो बिगड़ते बिगड़ते गज़ट कहलाने लगा है। धीरे धीरे इन परचोंकी खूब बिक्री होने लगी। पीछे इन परचोंने ही बड़े बड़े समाचारपत्रोंका रूप धारण किया। फ्रान्समें समाचारपत्रोंके चलनेकी विचित्र कहानी है। यहां सन् १६३१ ई० से समाचारपत्रोंका चलना शुरू हुआ था। उन दिनों फ्रांन्समें एक डाक्टर थे, वे अत्यन्त लोकप्रिय थे। रोजगार भी उनका अच्छा चलता था। अपने रोगियोंका मन बहलानेको वे एक परचे पर नित्य कुछ समा-

चार लिख ले जाते और रोगियोंको सुनाते थे। इससे उन लोगोंको बड़ी खुशी होती थी। रोगियोंको इस तरहसे समाचार पत्रोंका चसका लगाकर पीछे उन्होंने अपने परचोंका मूल्य नियत कर दिया। लोग बड़े चावसे उन परचोंको खरीदने लगे। बस इस भांति फ्रान्समें समाचार पत्रोंकी नीव पड़ी। डाक्टरके परचेकी देखा देखी और भी अखबार निकले, फ्रान्सकी राजक्रान्तिने फ्रान्समें नया युग उपस्थित कर दिया था। उस समय फ्रान्समें बड़ी हलचल मची। खूनकी नदी पेरिसकी गलियोंमें बहने लगी थी। अनेक सम्पादक वक्ता विद्वान फांसी पर चढ़ाये गये। यहां तक प्रजाने फ्रान्सके बादशाह लुईस-सत्तारहवेंको फांसी दे दी। सर्व साधारणकी क्रान्ति करने वालोंके प्रति सहानुभूति थी। सम्पादकोंने उस कठिन अवसर पर धीरज और हिम्मत नहीं छोड़ी। इससे समाचार पत्रोंका विशेष प्रचार हुआ क्योंकि सर्वसाधारण क्रान्तिके समाचार जाननेके लिये उत्सुक थे। उस समयसे फ्रांसमें समाचार पत्रोंकी संख्या बढ़तीही चली जाती है। लगभग पांच हजार अखबार वहाँसे निकलते हैं। सुना जाता है कि फ्रांसके दो दैनिक समाचार पत्र " टैम्स " और " जरनल " की ग्राहक संख्या १५, १५ लाखसे कम नहीं है। जर्मनीके अकेले बर्लिन नगरसे ही पचास दैनिक पत्र निकलते हैं।

ऊपर लिखा जा चुका है कि फ्रांसमें राजक्रान्तिके समय वहां अखबारोंकी ग्राहक संख्या बढ़ी। फ्रांसमें ही क्यों?

संसारके समस्त देशोंमें युद्धके अवसर पर अखबारोंके पढ़नेके लिये लोग उत्सुक रहते हैं। प्रसिद्ध अङ्गरेज़ी लेखिका शौरलाट एम० यङ्गके शब्दोंमें हमको भी कहना पड़ता है कि मनुष्य प्रकृति खून तथा सनसनी भरी घटनाओंके वर्णन पढ़ने तथा सुननेको विशेष उत्सुक रहती है। वाटरलूके युद्धके दो सप्ताह पीछे "कूरिये" नामक अखबारकी दस हजार प्रतियां एक दिनमें ही बिक गयीं। महारानी एलीज़ाबेथके समयसे इङ्गलेण्डने बहुत कुछ पलटा खाया है। उस समयसे ही इङ्गलेण्डमें समाचार पत्रोंका जन्म और प्रचार हुआ है। सन् १५८८ ई०में स्पेनने एक जहाजी बेड़ा इङ्गलेण्ड पर चढ़ाई करनेके लिये भेजा था। इससे इङ्गलेण्ड और स्पेनमें युद्ध ठना। इङ्गलेण्डवासी युद्धके समाचार जाननेके लिये बहुत उत्सुक हुए। इस युद्धके सामाचार पहुंचानेके लिये उस समय "इङ्गलिश मरक्यूरी" नामक समाचारपत्र प्रकाशित हुआ। यह छोटासा कागज़ था और उसमें केवल युद्ध-समाचार ही रहते थे। पीछे धीरे धीरे वहां भी समाचार पत्रोंका विशेष प्रचार होने लगा। पार्लिमेण्टके झगड़ोंमें समाचार पत्रोंकी विशेष वृद्धि हुई। इङ्गलेण्डमें उस समय समाचार पत्रोंकी बहुत बुरी दशा थी। नियमित रूपसे उस समय कोई समाचार पत्र नहीं निकलता था। लोगोंसे समाचार भेजनेकी प्रार्थना की जाती थी। आज विज्ञापनोंसे समाचार पत्रोंको हज़ारों रुपयेकी आमदनी होती है उस समय बिना कुछ लिये ही मुफ्तमें विज्ञापन छापे जाते थे। कभी कभी जगह

भरनेके लिये बाईबिलके बचन अखबारोंके कालमोंमें उद्‌धृत किये जाते थे। उस समय इङ्गलेण्डके समाचार पत्रोंकी न तो कुछ आमदनी थी न उनका विशेष प्रचार ही था। सन् १७०६ ई० में "डेली कूरान्ट" नामक दैनिक समाचार पत्र निकला। लण्डनका "टाईम्स" अखबार बहुत विख्यात है। वह लिबरल दलका कट्टर विरोधी है। "टाईम्स" का जन्म जनवरी १, सन् १७२४ ई० में हुआ था। पहले वह चार पन्नेकी छोटीसी पुस्तकके आकारमें छपता था। इसके जन्मदाता जौन वाल्टर थे। संवाददाता द्वारा समाचार संग्रह करनेकी प्रथा प्रचलित करनेवाले वाल्टर साहब थे। तभीसे दूसरे पत्रोंने "हमारे निज संवाददातासे" लिखनेका अनुकरण किया। वाल्टर साहबने अपने निज संवाददाता पहले पहल जर्मनीमें भेजे थे। वह उन्नीसवीं शताब्दी का आरम्भ था। वाल्टर साहब मामूली पढ़े हुए थे। औक्सफोर्डमें पादरीगरी पढ़ते पढ़ते उन्हें अखबार नवीसीकी हिम्मत हुई। उनके समयमें तार द्वारा समाचार मंगानेका ढङ्ग नहीं चला था। इसलिये वे बाहिरी समाचार विशेष दूतों द्वारा मंगाते थे। हर एक देशमें उनके दूत थे। ये दूत अपने अपने देशोंके समाचार दूसरे लोगोंके हाथ लण्डन रवाना करते थे। "टाईम्स" में इन समाचारोंका सारांश छपता था। ये बाहिरी समाचार तुरन्त आनेसे ताज़े रहते थे। लण्डनमें इन खबरोंको पढ़कर लोग विस्मित होते थे। पिछले यूरोपियन महायुद्धमें जिस प्रकार यूरोपके कई राज्य जर्म्मनीके

कैसरको मटियामेट करनेके लिये युद्धमें जुट गये थे। उसी प्रकार वाटरलूके युद्धमें भी कई यूरोपियन शक्तियां बेचारे नेपोलियनसे भिड़ गयीं। उस समय टाईम्सने अपने विशेष संवाद-दाता वहां भेजे थे। इन संवाददाताओंने लड़ाईके खतम होते ही, चार दिनके पीछे युद्धका कुल समाचार भेज दिया, जो मामूली रीतिसे उन दिनों, एक हफ्तेसे पहले नहीं आ सकता था। क्रीमियन युद्धके समय तो टाईम्सका बहुत महत्व बढ़ गया था। इस समय टाईम्सका बहुत बड़ा आकाशसे बातें करनेवाला दफ्तर है। टाईम्सके सम्पादकोंका पताही नहीं लगता है कि उसमें कितने सम्पादक हैं? टाईम्सका एक सिटी एडीटर भी रहता है। जो बाजार, बैंक एक्सचेंज आदि विषयों के लेखोंका सम्पादन करता है। सिटी एडीटरका काम, सिटी अर्थात् शहरमें होता है। टाईम्सके साथ चार क्रोड़ पत्र भी निकलते हैं, जिनके लेखक बड़े विद्वान् होते हैं और जिन विषयों पर लेख लिखते हैं उन विषयोंपर उनका पूर्ण अधिकार होता है। क्रोड़ पत्र चार या छ सफेके होते हैं।

ये क्रोड़ पत्र बड़े उपयोगी होते हैं, और इनमें एञ्जीनियरिंग, कानून साहित्य और व्यापार सम्बन्धी लेख रहते हैं। टाईम्सकी ग्राहक संख्या भी एक लाख सुनी जाती है।

लण्डनके प्रायः सभी मुहल्लोंसे एक, दो दैनिक या साप्ताहिक पत्र निकलते हैं। वहां बिना समाचार पत्रोंके लोकमत तैयार नहीं होता है। यहां उन सबका पूरा हाल देना असम्भव है।

केवल इतनाही कहना काफी है कि "डेली टेलीग्राफ" "डेलीन्यूज" "डेलीक्रानिकल," "मैनचेस्टर गार्जियन" आदि कई प्रभावशाली पत्र हैं, जिनमें किसी किसीकी ग्राहक संख्या तीन लाख है, और किसीकी इससे भी अधिक है। वहां कई समाचार पत्रों की आपसमें खूब खटपट रहती है। पर यह खटपट जैसे पहले "हिन्दी बङ्गवासी" और "भारतमित्र" में रहती थी, वैसी नहीं रहती है। यह खटपट इस बातकी रहती है कि किसके पाठकों को पहले ताजे समाचार पढ़नेको मिलें। "डेलीमेल" का एक कार्य्यालय लण्डनमें है दूसरा कार्य्यालय मैनचेस्टर और तीसरा कार्य्यालय फ्रान्सकी राजधानी पेरिसमें है। पैरिसवाला "डेलीमेल"—फ्रेंचभाषामें निकलता है। कितनेही विलायती अखबारोंका बड़ा प्रभाव है। वहांके कितनेही साप्ताहिक पत्रों-की ग्राहक संख्या भी दस लाखसे पच्चीस लाखतक सुनी जाती है। इङ्गलेण्डसे बहुतसे मासिक पत्र भी निकलते हैं।—जिनमें कितने ही साप्ताहिक समाचार पत्रोंमें चित्र होते हैं।

अमेरिकामें समाचार पत्रोंका प्रचार सन् १६९० ई० में हुआ है। स्वाधीनताके युद्धके समयसे वहां समाचार पत्रों-की ऐसी उन्नति हुई है कि जिसको देखकर लोगोंको चकित स्तम्भित होना पड़ता है। सन् १७७५ ई० में अमेरिकाके अख-बारोंकी संख्या केवल तेरह थी। सन् १८८० ई०में दोसौ हुई।—सन् १९०० ई० में करीब १८ हज़ार बढ़ी। आजकल वहां बीस-हज़ार अखबार हैं। इनमेंसे करीब ढाई हज़ार दैनिक तेरह हज़ार

सप्ताहिक और करीब दो हज़ार मासिक हैं। अमेरिकाके प्रसिद्ध तथा प्रभावशाली समाचार पत्रोंमें "न्यूयार्क हैरल्ड" "ट्रिव्यून" और "न्यूयार्क टाइम्स" हैं 'न्यूयार्क हैरल्ड'की एक प्रति पेरिससे भी निकलती है। अमेरिकाके ये अखबार बड़े जोरदार हैं। उनकी ग्राहक संख्या कई लाख है। अमेरिकाके कई समाचार पत्र ऐसे हैं जिनका प्रधान कार्य्यालय न्यूयार्कमें है और उनके कार्य्यालयकी शाखाएं पेरिस तथा लण्डनमें भी हैं। यूरोपमें समाचार पत्रोंकी उन्नतिका कारण यह भी प्रतीत होता है कि वहाँके शासन सम्बन्धी कार्योंका घनिष्ट सम्बन्ध सर्वसाधारणसे है। यह भारतवर्षही है कि जहाँकी नौकरशाहीके सामने भारतवासियोंकी आकांक्षाओंकी उपेक्षा की जाती है। यूरोपके कई स्थानोंमें और अमेरिकामें अखबारोंको पढ़नेके लिये, अमीरसे लेकर गरीब तक सब लालायित रहते हैं। स्त्रियाँ और बच्चे तक अखबार पढ़ते हैं। मजदूर मजदूरी करने जा रहा है पर एक अखबार उसके हाथमें जरूर है। मेहतर झाड़ू देता है और साथ ही अखबार पढ़ता है। केवल इन घटनाओंसे ही पता लगता है कि वहाँके निवासी अपने देशके कार्य्योंमें कितना भाग लेते हैं? अमेरिकामें पत्र-सम्पादन कला सिखलानेके लिये कितने ही विश्वविद्यालय हैं। इन विश्वविद्यालयोंके सम्बन्धमें इस पुस्तकमें आगे लिखा गया है।

अमेरिकावालोंने पत्र-सम्पादन कलाका विशेष महत्व समझा है। यही कारण है कि वहाँ पत्र-सम्पादन कलाकी उत्तरोत्तर

उन्नति हो रही है। हमारे देशमें हिन्दी भाषाका तो कहना क्या है अन्य किसी भाषाके सम्पादनके सिखलानेके लिये भी पत्र-सम्पादन कलाका कोई विद्यालय नहीं है। यह बात नहीं है कि यहाँ अच्छे पत्र-सम्पादकोंका सर्वथा अभाव ही हो, कितने ही अच्छे अच्छे सम्पादक हैं, जिन्होंने अपनी लेखनीके बलसे हज़ारों आदमियोंके विचार पलट दिये हैं। स्वर्गीय सम्पादक-सम्राट लोकमान्य तिलकने अपनी लेखनीके बलसे ही भारत-वर्षमें नवीन जागृति उत्पन्न कर दी थी। वे लेखनीके बलसे ही अगणित भारतवासियोंके हृदय-सम्राट् हुए थे। मिस्टर ए० जे० फ्रेजर ब्लेयरने जो कई एङ्गलो इण्डियन पत्रोंके सम्पादक और उपसम्पादक रह चुके हैं एकबार पत्र-सम्पादन कलापर व्याख्यान देते हुए कहा था कि "सम्पादकोंका कार्य्य करनेकी योग्यता भारतवासियोंमें बहुत अधिक है। इनकी तुलना यूरोपके उत्तम सम्पादकोंसे की जा सकती है।" अस्तु जो कुछ हो परन्तु यह अवश्य ही कहना पड़ता है कि भारत-वर्ष जैसे विशाल देशमें पत्र सम्पादन कलाका एक भी विद्यालय न होना बहुत ही खटकता है। ५-६ वर्ष हुए सुना था कि मैसूर राज्यने बङ्गलोरमें एक मुद्रण-कलाका शिक्षालय खोला है। शिक्षालय खोलनेसे पहले मैसूर राज्यने अपने यहाँके एक नवयुवकको विलायत भेजकर मुद्रण-कला सिखवायी थी। यदि ऊपर लिखी हुई घटना सत्य हो तो बड़ी खुशीकी बात है। क्या इस देशका कोई धनी किसी उत्साही नवयुवकको

अमेरिका भेजकर पत्र-सम्पादन कलाका काम नहीं. सिखला सकता है ?

भारतवर्षको देखते हुए जापान बहुत छोटा है पर उसने भी पत्र-सम्पादन कलाका महत्व समझा है। जापानसे अनुमान एक हजार समाचार पत्र प्रकाशित होते हैं। उससे कई गुने लम्बे चौड़े चीनसे बहुत कम समाचार-पत्र निकलते हैं। जापानमें समाचार पत्रोंका अधिक प्रभाव सुना जाता है। प्रसिद्ध देशभक्त लाला लाजपत राय लिखते हैं :—"जापानी पत्रोंको विचारपूर्वक देखनेसे मुझे मालूम होगया है, कि इनकी शक्ति इतनी बड़ी है, जितनी अमेरिकामें अमेरिकन पत्रों और इङ्गलण्डमें अङ्गरेजी पत्रोंकी नहीं है। जापानके मन्त्री वहाँके पत्रोंको शान्त रखनेमें भरसक चेष्टाएँ करते रहते हैं और जब पत्र उनपर लगातार कटाक्ष करते हैं तो वे बड़े बेचैन हो जाते हैं। वहाँ जिस पत्रके चलानेवाले थोड़े लोग होते हैं, उस पत्रका अधिक प्रभाव नहीं होता है। जापानमें जनतापर उसी पत्रका प्रभाव पड़ता है, जिसके चलानेवाले बहुत और अच्छे लेखक हों और जिनका प्रचार भी बहुत हो। लोगोंका विश्वास उस पत्रकी सम्मतिपर, अधिक नहीं होता है, जिसके सम्पादकीय विभागमें दो तीन स्थायी सम्पादक होते हैं। बल्कि उसपर जिसे, बहुतसे आदमी लिखते हैं और जिसे लोग अपने और बहुतसे देशभाइयोंके परिश्रमका फल समझते हैं, जिन्होंने पत्रमें उन बातोंके लिखनेमें समय और विचार

लगाया है, जिनसे पत्र अच्छा होता है। यह आवश्यकता जापानी पत्र पूरी करते हैं और इससे सर्वसाधारण और गवर्नमेन्टपर उनका प्रभाव पड़ता है। जापानमें भी प्रेस एक्टकी कुछ कड़ाई है पर भारतवर्षमें प्रेस एक्टकी कड़ाई देखते हुए वह कुछ भी नहीं है।



भारतमें अखबार।



"I will only say this—that nobody can avoid—here is nobody who is not bound to recognise that the press is a great centre and fountain of public-hearted duty and moral force; that it is the guide to an intellectual grasp of the facts of the wored and thirdly, that it is in its best forms an organ of practical common sense"—Lord Morley.

यह बिना किसी सङ्कोचके सबको स्वीकार करना पड़ेगा कि भारतवर्षमें समाचारपत्रोंका जन्म अङ्गरेज़ोंके समयसेही हुआ है। अङ्गरेज़ोंके आनेसे पहले भी इस देशमें किसी-न-किसी ढङ्गसे समाचार संग्रह किये जाते थे। पर आजकल जिस भांति समाचारपत्रोंका प्रचार है, वैसा उस समय न था। अङ्गरेजी सभ्यताके फेरमें पड़कर जहाँ हमने बहुतसी अपनी अच्छी बातें गवां दी हैं, वहाँ हमने अङ्गरेज़ोंसे समाचारपत्रोंके सञ्चालनका अच्छा ढङ्ग सीख लिया है। यहाँ इस विषयकी आलोचना करनेकी ज़रूरत नहीं है कि अङ्गरेज़ लोग भारतवर्षमें किस प्रकारसे व्यापार करने आये और पीछे किस ढङ्गसे भारतवर्ष जैसे विशाल देशके कर्त्ता-

धर्त्ता विधाता बन बैठे। पर यह कहे बिना नहीं रहा जा सकता कि आरम्भमें अङ्गरेजोंको अपना काम चलानेके लिये जिस भाँति कुछ अङ्गरेजी पढ़े लिखे आदमियोंकी ज़रूरत हुई थी, ठीक उसी तरह अपनी बातोंको प्रचार करने और इस देशके समाचारोंको जाननेके लिये अखबारोंकी आवश्यकता हुई। भारतमें सबसे पहला समाचारपत्र "नौकरशाही"ने ही निकाला था, इसका नाम "कलकत्ता-गज़ट" था। स्यात् यह पत्र वारेन हैस्टिङ्ग के समयमें निकला था। एक व्यक्तिने निजके तौरसे पहला पत्र कलकत्तेसे "हिकीज़ बङ्गाल गज़ट"—२० वीं जनवरी सन् १७८० ई० को प्रकाशित किया था। सबसे पहला एङ्लो-इण्डियन पत्र यही था—पीछे इस पत्रका नाम —"कलकत्ता जैनरल एडवरटाईज़र (Calcutta General Advertiser) रखा गया था। कुछ दिन चलकर यह पत्र भी बन्द होगया था। सन् १७६१ ई० में सतीकी प्रथाका पक्ष समर्थन करनेके लिये "कलकत्ता—चन्द्रिका" प्रकाशित हुई। इसके उत्तरमें, अर्थात् सतीकी प्रथाका बिरोध करनेके लिये "कौमुदी" नामक पत्रिका प्रकाशित हुई। सन् १८१८ ई० में श्रीरामपुरसे कुछ ईसाई पादरियोंने "समाचार दर्पण" नामक एक अखबार निकाला था, किसी किसीका मत है कि देशी भाषा का सबसे पहला अखबार यही था। पीछे वङ्ग भाषाके और भी कई अखबार निकले थे। तबसे लेकर सन् १८५७ ई० के सिपाही विद्रोह अथवा राष्ट्र-विप्लव तक कोई ३७ समाचारपत्र बङ्गालमें निकले और बन्द हो

गये। वर्त्तमान एङ्गलो इण्डियन समाचारपत्रोंमें सबसे पुराना कलकत्तेका "इण्डियन डेली न्यूज़" है। देशी भाषाका सबसे पुराना पत्र "बम्बई समाचार" है। इसका जन्म सन् १८२२ हीमें हुआ था। यह पत्र सन् १८३२ हीमें दैनिक होकर कई कारणोंसे सन् १८३३ हीमें साप्ताहिक हुआ, परन्तु गुजराती भाषा—भाषियोंके उत्साह और उद्योगसे पुनः सन् १८५५ ई० में दैनिक हुआ और अभीतक दैनिक है। इसके अतिरिक्त "सांझ वर्त्तमान" "पारसी" "जामे जमशेद" आदि दैनिक तथा कई साप्ताहिक और मासिक पत्र हैं। मराठी भाषाके समाचारपत्रोंमें "ज्ञान प्रकाश" बहुत पुराना है। "इन्दुप्रकाश" भी पुराना पत्र है। यह अङ्गरेजी और मराठी दोनोंमें निकलता है। इसके अङ्गरेजी कालमोंके सम्पादक कुछ दिनतक स्वर्गीय श्रीयुक्त महादेव गोविन्द रानाडे भी रहे थे। मराठी साप्ताहिक पत्रोंमें "केसरी" को निकलते हुए लगभग ४१—४२ वर्ष होगये हैं। इस पत्रके जन्मदाता लोकमान्य तिलक थे। मराठी भाषा भाषियोंमेंही नहीं, समस्त भारतवर्षमें, इस पत्रका बिशेष आदर है। सच बात तो यह है कि "केसरी" के जोड़का पत्र, भारतकी देशी भाषाओंमें तो क्या, अङ्गरेजीमें भी कोई दिखलायी नहीं पड़ता है। मराठी का "काल" नामक साप्ताहिक पत्र भी बहुत बढ़िया था परन्तु प्रेसएक्ट्ने उसका अन्त कर दिया। इस समय मराठी भाषामें कितनेही दैनिक, साप्ताहिक और मासिक पत्र हैं। उर्दू में भी इस समय कितनेही दैनिक, मासिक और साप्ताहिक पत्र हैं।

स्वर्गीय बाबू बालमुकुन्द गुप्तकी गुप्त निबन्धावलीसे पता लगता है, कि उर्दू में सबसे पहला अखबार लाहौरसे सन् १८५० ई०में "कोहेनूर" निकला था। जो अब स्यात् बन्द होगया है। लाहौरमें उर्दू के दैनिक अखबार खूब बिकते हैं। कलकत्ते में बङ्गभाषाके दैनिक समाचार पत्रोंकी उतनी संख्या नहीं है, जितनी लाहौरमें उर्दू अखबारोंकी है। इसके पीछे "अवध-अखबार" "अखबारे-आम" "पैसा-अखबार" "हिन्दुस्तानी"आदि कई उर्दू पत्र निकले, जिनमेंसे कुछ तो अब भी प्रकाशित होते हैं और कुछ बन्द होगये हैं। उर्दू के पुराने समाचारपत्रोंके अतिरिक्त इस समय कई नये दैनिक, साप्ताहिक और मासिक पत्र भी प्रकाशित होते हैं। मासिक पत्रोंमें कानपुरके "ज़माना" की बहुत तारीफ सुनी जाती है। दैनिक पत्रोंमें प्रसिद्ध देशभक्त लाला लाजपतरायके "बन्दे-मातरम्" की बहुत धूम है।

उर्दू अखबार "कोहेनूर" के निकलनेसे पाँच वर्ष पहले, हिन्दी अखबारोंकी नींव पड़ गयी थी। अर्थात् सन् १८४५ ई० में राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्दकी सहायतासे "बनारस-अखबार" काशीसे प्रकाशित हुआ था। एक महाराष्ट्रीय सज्जन गोविन्द रघुनाथ पत्ते उसके सम्पादक थे। मालूम होता है कि उक्त अखबार बहुत दिनतक टिकाऊ नहीं रहा, क्योंकि उस समय एक तो हिन्दी अखबार पढ़नेवाले बहुत थोड़े थे, दूसरे उक्त पत्रके सञ्चालक राजा शिवप्रसाद ज़रूरतसे ज़ियादा नौकरशाहीके भक्त थे। शायद इसी कारण, कुछ लोग

उस समय उनसे चिढ़े भी थे। "बनारस-ग़ज़ट" के पीछे और भी दो-एक समाचारपत्र "सुधाकर" आदिका जन्म हुआ था। पर ये सब समाचारपत्र नवजात शिशुके समानही थोड़े समयमें ही चल बसे। हिन्दी समाचारपत्रोंकी नींव भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रके "कविवचन-सुधा" के जन्मसे समझी जाती है। "कवि-वचन-सुधा" पहले मासिक निकलता था। सुना जाता है कि पहले उसमें प्राचीन कवियोंकी पद्य-रचनाओंका संग्रह छपता रहा था, पीछे उक्त पत्र पाक्षिक हुआ, फिर साप्ताहिक होगया और उसमें गद्य लेख भी निकलने लगे थे। मालूम होता है कि हिन्दी भाषा भाषियोंमें यह पुराना रोग है कि वे मासिक पत्रको पाक्षिक और साप्ताहिक करनेमें पत्रकी उन्नतिकी चरम सीमा समझते हैं। सच पूछिये तो मासिक, साप्ताहिक और दैनिक पत्रोंके उद्देश्य और कर्म्म अलग अलग होते हैं। "कविवचन सुधा" के पीछे "अल्मोड़ा अखबार", "विहारबन्धु", "भारतमित्र", "उचित वक्ता", "सारसुधानिधि" आदि कई साप्ताहिक पत्र निकले, जिनमेंसे इस समय केवल "भारतमित्र" दैनिक और साप्ताहिक दोनों प्रकारसे हिन्दीकी सेवा कर रहा है। "भारतमित्र" के अतिरिक्त "कलकत्ता-समाचार" "विश्वमित्र," "साम्यवादी," "स्वतन्त्र" "आज" आदि कई दैनिक पत्र हिन्दीकी सेवा कर रहे हैं। साप्ताहिक "प्रताप" बहुत बढ़िया होता है। "अभ्युदय", "कर्मवीर" "राज-स्थान-केसरी" "आर्यमित्र" आदि समाचारपत्र भी अच्छे निकलते हैं। "हिन्दी बङ्गवासी" और "श्रीवेङ्कटेश्वर समा-

चार"—पुराने साप्ताहिक पत्र हैं। "प्रभा" "मर्यादा" "ज्योति" "शारदा" और "सरस्वती" आदि मासिक पत्र भी अच्छे निकलते हैं। हिन्दीमें मासिक पत्रोंकी उन्नतिका मार्ग दिखलानेका श्रेय—"सरस्वती"के सम्पादक पं० महावीर प्रसादजी द्विवेदीको है। यद्यपि "हिन्दी" संसारमें साप्ताहिक पत्रोंके साथही साथ मासिक पत्रोंकी भी नींव बाबू हरिश्चन्द्रने डाली थी परन्तु उस समय आजकलके समान हिन्दीकी उन्नति नहीं हुई थी। यही कारण है कि उन दिनों कई साप्ताहिक पत्र निकले और बन्द हो गये। जहाँ हिन्दी भाषा भाषी, कालाकाँकरके धनकुबेर राजा रामपालसिंहको वर्षों घाटा सहकर हिन्दीमें दैनिक "हिन्दोस्तान" निकालनेके लिये भूल नहीं सकते हैं, वहाँ वे सरस्वतीके वर-पुत्र पं० बालकृष्ण भट्टके भी सदैव कृतज्ञ रहेंगे, जिन्होंने लगातार तीस वर्षतक घाटा सहकर भी * "हिन्दी-प्रदीप" को मासिक रूपमें प्रकाशित किया था।

कुछ लोगोंकी आदतही हिन्दीको बदनाम करनेकी पड़ गयी है, नहीं तो इस समय हिन्दीमें कई दैनिक और साप्ताहिक पत्र ऐसे बढ़िया निकलते हैं, जिनके सामने बङ्गभाषाके दैनिक और साप्ताहिक पत्र भी कुछ नहीं जंचते हैं।

---

* काशी नागरी प्रचारिणी सभाने बाबू राधाकृष्णदास लिखित सन् १८९७ ई०में "हिन्दी भाषाके सामयिक पत्रोंका इतिहास" "नामक पुस्तक प्रकाशित की थी, जिसमें सन् १८९६ ई० तकका हिन्दी पत्रोंका इतिहास है। इसके अतिरिक्त बाबू बालमुकुन्द गुप्तकी निबन्धावलीमें भी हिन्दीके कुछ पत्रोंका इतिहास है।

यहाँ देशी भाषाके समाचारपत्रोंमें "अमृत-बाजार" पत्रिकाके सम्बन्धमें कुछ न लिखना भी भारी भूल है। अपने जन्मकालसे लेकर अबतक "पत्रिका" इस देशकी अच्छी सेवा कर रही है। परन्तु "पत्रिका" के आजकलके ठाटबाट देखकर, कोई नहीं कह सकता कि वह केवल दो सौ चालीसकी पूंजीसे प्रकाशित की गई थी। कलकत्ते के अहीरी टोलेमें एक उत्साही सज्जनने २४०) में एक प्रेसका सामान खरीदा था। पर वह उसे जारी करनेसे पहले मर गया। वही सामान कलकत्ते से खरीदा जाकर अमृत-बाजार नामक गांवमें भेजा गया, जो बङ्गालके जैसोर जिलेमें है। वहींसे बङ्गभाषामें छोटेसे आकारमें "अमृत बाजार पत्रिका" साप्ताहिक निकाली गयी। "पत्रिका" ने अपने जन्मसेही धड़ल्ले के साथ "नौकरशाही" के कार्य्योंकी आलोचना की। जिससे उसे अपनी चार महीनेकी अवस्थामेंही नौकरशाहीका कोपभाजन होना पड़ा। आठ मासतक उसपर मानहानिका मुकदमा चला। अन्तमें प्रिण्टरको छः महीनेकी और लेखकको एक वर्षकी, जेलका दण्ड हुआ। जैसोर जिलेकी नौकरशाहीने बहुत बल पकड़ा,—साथही वहाँ मलेरिया ज्वरका भी प्रकोप हुआ। जिसके कारण पत्रिकाके मालिकको अपना गाँव छोड़कर कलकत्ता आना पड़ा। उस समय "पत्रिका" के स्वामीके पास केवल सौ रुपये थे, जो २५) सैकड़े सूदपर अपने पड़ौसीसे लिये थे। तीन मास तक "पत्रिका" बन्द रही। पीछे फिर प्रकाशित हुई और उसमें पोलिटिकल कारटून निकले, जो देशी अख-

बारोंमें एकदम नयी चीज़ थी। इससे उस समय पत्रिकाका बड़ा नाम हुआ। उसके बाद बड़ोदानरेश मल्हार राव गायकवाड़पर रेजीडेण्टको विष देनेकी चेष्टा करनेका अभियोग लगाया गया। उस समय पत्रिकाने अच्छा आन्दोलन किया। बङ्गला पत्र होनेपर भी उसने कई लेख अङ्गरेजीमें भी प्रकाशित किये, उस समयसे पत्रिका बङ्गला और अङ्गरेजीमें निकलने लगी। इतनेमें लार्ड लिटनने वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट प्रचलित किया। देशी भाषाके पत्रोंकी स्वाधीनता एकदम छिन गयी। "पत्रिका" ने प्रेस एक्टके कोपसे बचनेके लिये अङ्गरेजी रूप धारण कर लिया। पहले साप्ताहिक और पीछे सन् १८६१ ई० से "पत्रिका" दैनिक निकली जो बराबर उन्नति कर रही है और अबतक बराबर अपने सिद्धान्त और उद्देश्योंका अटल रूपसे प्रचार कर रही है।

"पत्रिका" के अतिरिक्त हिन्दुस्तानियोंके अङ्गरेजी भाषामें और भी कई अखबार—"लीडर" "बम्बे क्रानिकल" "इण्डिपेण्डेण्ट"—"ट्रिब्यून" "पञ्जाबी" "बङ्गाली" "हिन्दू" "मराठा" आदि निकलते हैं, जिनके विषयमें यहाँ विशेष उल्लेख करनेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि समाचारपत्रोंका शृङ्खलाबद्ध इतिहास नहीं लिखा जारहा है। यहाँ देशी और विदेशी समाचारपत्रोंके सम्बन्धमें इसलिये उल्लेख कर दिया गया है, कि आगे पत्र-सम्पादनकला सम्बन्धी अन्य बातोंके समझनेमें सुगमता प्राप्त हो।

---

(४)

भारतमें प्रेस एक्ट।

"दिल जले हैं गमसे औ आंसू बहाना मना है।
लग रही है आग घरमें औ बुझाना मना है॥
जिगरमें है शोलः औ नाला उठाना मना है।
चाक पर है चाक औ मरहम लगाना मना है॥"

हिन्दुस्तानमें अखबारोंको आरम्भसेही कानूनकी जञ्जीरमें जकड़ा गया है। जितनी स्वतन्त्रता अन्य देशके छापेखाने और अखबारोंको है, उतनी स्वतन्त्रता इस देशके छापेखाने और अखबारोंको नहीं है। इस देशके अखबारोंको कानूनकी जञ्जीरमें बहुत मज़बूतीके साथ जकड़ा गया है। यह कानूनकी जञ्जीरभी हमारे यहाँ के अखबारोंकी उन्नतिमें बाधक है। भारत जैसे देशमें समाचारपत्रोंको जितनी स्वाधीनता होती उतनाही अच्छा था। पर यहाँ उलटी गङ्गा बह रही है। जिस देशमें विदेशी शासक हों, जहाँ शासक और शासित दोनोंके समाजकी रीति रिवाज़ न मिलती हो, जहाँ शासक और शासित दोनों जातियोंकी परिस्थिति, एक दूसरेसे भिन्न हो, वहाँ उचित तो यही है कि जिन लोगोंके हाथमें पराधीन देशके भाग्यकी बागडोर है, वे अपनी अधीन जातिके दुःख-सुखसे भली भाँति परिचित हों, दुःख सुःख से परिचित होनेका एकही उपाय है कि समाचारपत्रोंको अपने देशकी परिस्थितिके सम्बन्धमें

सच्ची सम्मति प्रकट करनेकी स्वाधीनता प्रदान की जाय। पर हतभाग्य! सभ्यताका घमण्ड करनेवाली भारतकी "नौकरशाही" इस तत्वको नहीं समझती है। जिसके कारण इस देशके अखबार कानूनकी जञ्जीरमें जकड़े हुए हैं यह कानूनकी जञ्जीर आजसे नहीं, बहुत दिनोंसे इस देशमें प्रचलित है। अङ्गरेजी सभ्यताके साथही इस देशमें अखबारोंका जन्म हुआ है, उस समयसेही समाचारपत्रोंकी स्वाधीनतापर शनिश्चर सवार है। ऊपर यह लिखा जा चुका है कि वारन हेस्टिङ्गके समयमें सबसे पहला समाचारपत्र निकला था। क्रमविकास अर्थात् शनैः शनैः किसी वस्तुकी उन्नति होना—सृष्टिका नियम है। अतएव लार्ड कार्नवालिस और जौन शोरके समयतक संवादपत्रोंकी क्रमशः उन्नति होती रही। कार्नवालिस समाचारपत्रोंका सम्मान करते थे। वे सदैव समाचारपत्रोंकी सम्मतिको आदरकी दृष्टिसे देखते थे। समाचारपत्रोंकी खरी और सच्ची सम्मितिपर वे सदैव ध्यान देते थे। जो समाचारपत्र नौकरशाहीके कार्य्योंकी आलोचना करते थे, उन समाचारपत्रोंपर रुष्ट नहीं होते थे। परन्तु कुछ दिनों पीछे लार्ड कार्नवालिसकी दृष्टि एक यूरोपियन सम्पादकपर पड़ी, जिसका नाम विलियम डेन था, वह "बङ्गाल जर्नल" का सम्पादक था। उसने अपने अखबारमें किसी फ्रेंच अफसरके सम्बन्धमें कुछ अपमान जनक बातें लिखी थीं। सन् १७८१ ई० में लार्ड कार्नवालिसने इङ्गलेण्डकी कोर्ट औफ डाईरेक्टरस्‌का ध्यान इस अखबारकी लिखावटकी ओर आकर्षित किया। उस समय

ही बेचारा विलियम डेन स्यात् इङ्गलैण्ड भेज दिया जाता, परन्तु उस समय कलकत्ते में जो फ्रेंच एजेण्ट रहता था, उसके हस्तक्षेप करनेसे डेन इङ्गलैण्ड नहीं भेजा गया। किन्तु डेनके मन्दभाग्यने उसे बहुत दिनतक भारतवर्षमें टिकने नहीं दिया। सन् १७८४ ई० में सर जौन शोरने विलियम डेनके अखबारमें प्रकाशित कुछ लेखोंपर नाराज होकर उसे देश निकालेकी सजा दी।* लार्ड बेलसलीके समयमें अखबारोंपर सेन्सर बैठाया गया। उसका कारण यह था कि उस समय फ्रेंच और अङ्गरेजोंमें युद्ध ठना था। इतिहास रसिक पाठकोंसे यह अविदित नहीं है कि, जिस समय मुग़ल साम्राज्यका सौभाग्य रवि अस्ताचलगामी होरहा था, उस समय भिन्न भिन्न यूरोपियन जातियाँ वाणिज्य विस्तारके बहानेसे अपने राज्य विस्तार करनेकी चेष्टा कर रही थीं। फ्रेंच लोग

* विलियम डेनका जन्म अमेरिकामें हुआ था। पर डेन छोटी उम्रमेंही आयर्लेण्ड चला गया था, वहीं उसने प्रेसका काम सीखा और कलकत्ते से एक अखबार निकाला, जिसका नाम "बङ्गाल-जर्नल" था। डेन अपने अखबारमें ईस्ट इण्डिया कम्पनीके कर्म्मचारियोंके कामकी निधड़क होकर आलोचना करता था। जिसके कारण उसका ईस्ट इन्डिया कम्पनीके कर्मचारियोंसे मेल भी बहुत बढ़ गया था। बड़े लाटतक उसका दोस्तोंकासा बर्ताव था। उसके प्रभावका इससेही अनुमान किया जा सकता है कि देश निकालेके दिन सर जौन शोरके प्राइवेट सिक्रेटरी कैप्टेन कालिसने उसको बुलानेके लिये चिट्ठी भेजी थी। दूसरे दिन ठीक वक्तपर डेन बड़े लाटके यहाँ पहुँच गया। उसके वहाँ पहुँचने पर कालिन्सने कहा—आप ठीक वक्तपर आये हैं। डेनने उत्तर दिया:—"बड़े लाट अच्छी तरह हैं न!" प्राईवेट सिक्रेटरीने उत्तर दिया हाँ—अच्छी

चाहते थे कि भारतमें अङ्गरेजोंकी क्षमता न रहे और अङ्गरेज भी यह जानते थे कि "एक म्यानमें दो तलवार नहीं समा सकती है।" बस अपने अपने स्वार्थके लिये सबही रणचण्डीकी शरण ले रहे थे। फ्रेंच और अङ्गरेजोंमें भी अपने स्वार्थकी रक्षाके लिये लड़ाई होरही थी। इसलिये उस समय अखबारोंपर सेन्सर बैठाया गया था। युद्धके सम्बन्धमें कोई अखबार बिना सेन्सर-को दिखाये हुए, समाचार नहीं छाप सकता था और भी कई प्रकारके नियम बनाये गये, जिससे सम्पादक और पत्रके सञ्चालकोंको अनेक प्रकारकी अड़चनें आने लगीं। उस समय देशी समाचारपत्र न थे, अङ्गरेजोंकेही समाचारपत्र थे। अङ्गरेज सम्पादकों और मालिकोंके सम्बन्धमें उस समय एक कानून यह भी था कि जो कोई अङ्गरेज, समाचारपत्र सम्बन्धी कानूनको तोड़े, तो उसको भारतसे बाहर जाने, भारतमें रहने तथा भारतमें आनेके

तरह हैं पर उनसे आपकी मुलाकात नहीं होगी।" अभागे डेनने, जिसका थोड़ी देर पीछे सर्वनाश होनेवाला था, बड़े ताज्जुबसे पूछा, कि आपने फिर मुझको क्यों बुलाया ?" इसपर बड़े लाटके प्राईवेट सक्रेटरीने उसको कैदी होनेकी सूचना दी। ऐसा कहकर प्राईवेट सक्रेटरीने इशारा किया और कितनेही सिपाही संगीनें लेकर उपस्थित हुए। डेनने सिर्फ यह कहाः— "तुम्हारा यह नीच कर्म।" दो दिन वह जेलमें रखा गया, पीछे जहाजपर चढ़ाकर इङ्गलेण्ड भेज दिया गया। दूसरे दिन उसके देश निकालेकी यह घोषणा की गयी कि डेनके अखबारमें राजकर्मचारियोंके विरुद्ध एक लेख छपा है। जिसके कारण उसको देश निकालेका दण्ड दिया गया है। इस घटनाके पीछे डेन फिर कभी हिन्दुस्तानमें नहीं आसका।"

लिये, जो आज्ञापत्र मिलेगा, वह रद्द किया जा सकेगा। ईस्ट इण्डिया कम्पनीके समयमें भारतमें बसने और रहनेवाले अङ्गरेजों को आज्ञापत्र मिलता था। उस समय भारतवर्षसे कुछ अङ्गरेज सम्पादक विदेशोंमें चले गये थे, उन्होंने भारतके बाहर अनेक स्थानोंमें, भारतमें प्रेस (मुद्रायन्त्र) की स्वाधीनताके लिये विशेष रूपसे आन्दोलन किया था। उन्होंने विलायतमें अपनी वक्तृताओं द्वारा और छोटे छोटे पेम्फलेट बाँटकर यह आन्दोलन किया कि भारतमें प्रेसको स्वाधीनता मिलनी चाहिये।

लार्ड वेलस्लीसे लेकर लार्ड मिन्टो (सन् १८०१–१८१३ ई०) तक, भारतवर्षके समाचारपत्रोंकी विशेष उन्नति नहीं हुई। उस समय सरकारकी ऐसीही नीति थी कि इस देशमें समाचारपत्र विशेष रूपसे अपना बल न बढ़ा सकें। उस समय गवर्नमेन्ट यह भी चाहती थी कि इस देशके निवासियोंके ज्ञान-चक्षु न खुलें, कोई राजा अपनी प्रजामें ज्ञानका विकास न करें। उस समय गवर्नमेन्ट ऐसे कार्योंके लिये उत्साहित नहीं करती थी।*

---

*"It was our policy in those days to keep the natives of India in the profoundest possible state of barbarism and darkness, and every attempt to diffuse the light of knowledge among the people was vehemently oppossed and resented...—Captain Sydenham wishing to gratify an opposed desire expresed by the Nizam to see some of

उन दिनों कप्तान सिडेनहम, हैदराबाद (दक्षिण) के ब्रिटिश रेजीडेण्ट थे। उन्होंने हैदराबादके तत्कालीन नवाबके कौतुहल निवारणके लिये यूरोपीय विज्ञानमेंसे वायु निष्कासन यन्त्र, एक छापाखाना और एक युद्ध जहाज़का नमूना मंगवाया था। सिडेनहम साहबने गवर्नमेन्टके प्रधान सेक्रेटरीको यह बात जता भी दी थी। सिक्रेटरीने स्वाधीन राजाके यहाँ छापाखाना जानेमें भयानक विपत्ति समझी। और रेजीडेंटका अत्यन्त तिरस्कार किया। उत्तरमें रेजीडेन्टने लिखा कि इस गवर्नमेण्टको डरनेकी कोई बात नहीं है। क्योंकि छापेखानेमें नवाबका कुछ भी अनुराग नहीं है। तोशाखानेमें योंही टूटी फूटी अवस्थामें छापाखाना पड़ा हुआ है।*" अस्तु मिन्टो गवर्नमेण्टके समयमें समा-

---

the appliances of European Science procured for him three specimens, in the shape of an air pump, a printing press and the model of a man-of-war. Having mentioned this in his demi-official correspondence with the Chief Secretary, he was censured for having placed in the hands of a native prince so dangerous an instrument as a printing press. Kayes' life of Metcalf—Vol II page 248.
ऊपर इन अङ्गरेजी वाक्योंका भावार्थ लिख दिया है।

* उस समय ही क्यों, इस समय भी देशी-राज्योंमें छापेखानेके सम्बन्धमें न तो देशी राजाओंकोही अनुराग है और न अधिकांश प्रजाको विशेष

चारपत्रोंकी दशा बहुत बुरी रही। लार्ड मिन्टोंके समयमें धार्मिक विद्वेष भाव फैलानेका कानून बना। सन् १८११ ई० में यह कानून बना कि विज्ञापन आदि सबके नीचे मुद्रकका नाम रहना चाहिये। लार्ड बेलस्लीके समयमें समाचारपत्रोंपर

अनुराग है। उसका कारण भारत सरकारका—जून सन् १८६१ ई० में प्रकाशित मन्तव्य है। यह मन्तव्य देशी राज्योंके सम्बन्धमें है। इसका सारांश यह है :—

(१) पहली अगस्त सन् १८६१ ई०के पीछे पोलिटिकल एजेन्टकी लिखित आज्ञा बिना कोई समाचारपत्र, मुद्रित पुस्तक, जो चाहे सामयिक हो अथवा और कोई विषयकी हो, जिसमें सामयिक विषयोंपर टिप्पणी हों अथवा समाचार हों, नहीं छापे जा सकते हैं।

(२) यदि कोई ऊपर लिखी हुई आज्ञाका उल्लङ्घन करके किसी समाचार-पत्र अथवा सामयिक पुस्तकका सम्पादन, प्रकाशन और मुद्रण करेगा तो पोलिटिकल एजेन्ट उसे निम्नलिखित आज्ञा प्रदान करेंगे।

(क) आज्ञा प्रदानके दिवससे सात दिनके भीतर,सम्पादक, प्रकाशक और मुद्रक उस स्थानको छोड़ दें। जिस स्थानसे समाचारपत्र प्रकाशित हुआ है।

(ख) फिर उस स्थानमें पोलिटिकल एजेन्टकी आज्ञा बिना प्रवेश नहीं कर सकता है

(३) यदि कोई ऊपर लिखी हुई आज्ञाका उल्लङ्घन करेगा तो पोलिटिकल एजेण्टकी लिखित आज्ञासे वह अपने स्थानसे जबरदस्ती बाहर निकाल दिया जायगा। सन् १८६४ ई० से सन् १८६६ ई० तक इण्डियन नेशनल कांग्रेस (भारतीय राष्ट्र महासभा) ने देशी राज्योंमें प्रेस सम्बन्धी कड़ाईके विषय में प्रति वर्ष प्रस्ताव निश्चित किया,पर जिस प्रकार कांग्रेसके अन्य प्रस्तावों की अवहेलनाकी गयी,वैसेही इस प्रस्तावपर भी कुछ ध्यान नहीं दिया गया।

सेन्सरशिप बैठा था, वह इस समय और भी कठिन होगया। यह कठिनाई यहाँतक बढ़ी कि अखबार छापनेसे पहले, सम्पादकोंको समाचारपत्रोंमें प्रकाशित होनेवाले लेखोंका प्रूफ गवर्नमेण्टके सक्रेटरीको दिखलाना पड़ता था। लेखोंका प्रूफ दिखलानेका सिलसिला—मारक्विस आवहेस्टिङ्गज़के समयतक रहा। जिसके कारण उस समय अखबारोंकी बहुत बुरी हालत रही। मारक्विस आव हेस्टिङ्गज़ लार्ड मिन्टोकी अपेक्षा कुछ उदार थे, उन्होंने किसी प्रकारका सन्देह न करके संवादपत्रोंको गवर्नमेण्टके कार्य्योंकी आलोचना करनेकी अनुमति दी थी। इससे उस समय समाचारपत्रोंकी जो स्वाधीनता छिन गयी थी, वह कुछ शिथिल हुई। लोगोंको फिर समाचारपत्र निकालनेका साहस और उत्साह हुआ। सन् १८१८ ई०में "कलकत्ता-जर्नल" (Calcutta-Journal) नामक एक अङ्गरेजी समाचारपत्र निकला। इस पत्रका अत्यन्त योग्यता और दक्षता पूर्वक सम्पादन होता था। सरकारके प्रत्येक कार्यको यह अखबार स्वाधीनतापूर्वक आलोचना करता था। मारक्विस आव हेस्टिङ्गज़के अनेक मंत्री समाचारपत्रोंको स्वाधीनता प्रदान करनेके पक्षमें न थे और जान एडम नामक एक व्यक्ति उनकी कौन्सिलमें सीनियर मेम्बर था, उसने समाचारपत्रोंकी स्वाधीनताका घोर विरोध किया। किन्तु मारकिस आव हेस्टिङ्गज़ने उसकी एक नहीं सुनी। अखबारोंकी स्वाधीनताके पक्षपाती होनेपर भी हेस्टिङ्गज़के समयमें बहुत से कानून बने थे। जिनमें सन् १८१८ का तीसरा रेगूलेशन

(कानून) विख्यात है। यह कानून ७ एप्रिल सन् १८१८ को पास हुआ था।* सन् १८१८ ई० में "कलकत्ता-जर्नल" प्रकाशित हुआ। हेस्टिङ्ग्ज़के समयमें "कलकत्ता जर्नल" निडर होकर सरकारी कामोंकी आलोचना करता रहा। परन्तु सन्

---

* इस कानूनका मर्मांश यह है कि ब्रिटिश सरकारने जो विदेशी राज्योंसे सन्धियाँकी हैं,उनकी रक्षा तथा अपने राज्य और अपने अधीन देशी राज्यों के भीतरी और बाहरके आक्रमणोंसे बचानेके लिये कभी कभी उसको यह ज़रूरत पड़ती है कि किसी आदमीको बिना कोई अभियोग लगाये अथवा मुकदमा चलाये नज़रबन्द रखा जाय। इसलिये निश्चय किया जाता है कि इस की आज्ञा गवर्नर जनरलही दें। जिन कारणोंसे कोई नज़रबन्द किया जाय, उनपर भी कभी कभी निगाह करते रहना चाहिये। जो आदमी नज़रबन्द हो उसे भी चाहिये कि समय समयपर उन कारणोंके सम्बन्धमें जो नयी बात मालूम हो, सरकारके सामने प्रकट करता रहे। प्रत्येक सरकारी कैदीके साथ खियाल रखा जाय और उसके पदके अनुसार उसके साथ बर्त्ताव किया जायगा। और उसके बालबच्चोंकी जीविकाका बन्दोबस्त करना होगा। यदि किसीकी जायदाद अथवा राज्यका प्रबन्ध सरकार अपने हाथमें ले तो उसका ऐसा बन्दोबस्त किया जाय कि जायदादके स्वामीको किसी प्रकारकी हानि न पहुँचे, इसलिये जब कभी किसी आदमीको पकड़कर नज़रबन्द रखना हो तो वाइसराय उसकी गिरफ्तारीके लिये वारण्ट जारी करेंगे। उसमें लिखा होगा कि अमुक आदमीको पकड़कर नज़रबन्द रखनेकी बड़े लाट ज़रूरत समझते हैं। इससे अमुक अफसरको हुक्म दिया जाता है कि उसे पकड़के अमुक स्थानमें कैद कर दे।" खेद है कि ऐसे ज़बरदस्त कानूनके होते हुए भी भारत सरकारने डिफेन्स एक्ट बनाही डाला और महासमरकी समाप्ति के पीछे रौलट एक्टकी सृष्टि की।

१८२३ ई०में हेस्टिङ्गज़के चले जानेपर जौन एड़मकी बन आयी। उसका कारण यह था कि, जौन एड़म कुछ दिनोंके लिये भारतवर्षका गवर्नर जनरल हुआ। वह इस बातका पक्षपाती था कि, गवर्नमेण्टकी स्वार्थरक्षाके लिये समाचारपत्रोंका दमन करना चाहिये। हेस्टिङ्गज़के समयमें एड़म जिन कार्यों से समाचारपत्रोंका दमन करना चाहता था, उन सबको उसने इस समय कर दिखलाया। सबसे पहले उसकी वक्रदृष्टि "कलकत्ता-जर्नल"पर पड़ी। उसके सम्पादक बकिङ्घमको देश निर्वासनका दण्ड देकर इङ्गलेण्ड भेज दिया।* उस समय समस्त देशमें बड़े लाटकी इस आज्ञाके विरुद्ध भयङ्कर आन्दोलन हुआ। इससे जौन एड़म-

* बम्बईके गवर्नर मिस्टर एलफिनस्टनने सन् १८२४ ई०में "बम्बै गज़ट" के सम्पादक—सी० जे० फेयरको भारतसे निर्व्वासित करके इङ्गलेण्ड भेज दिया। सन् १८२७ ई० में, बंगालके सन् १८१८ ई० के तीसरे रेगूलेशनके ढङ्गकाही बम्बै कानून बना, जो बहुत दिनोंतक काममें नहीं लाया गया। सन् १८८६ ई० में महाराज दलीप सिंह भारतको आ रहे थे तब एडेनपर इस कानूनके अनुसारही रोके गये। प्रयागके किलेमें कुछ राज-नीतिक कारणोंसे पञ्जाबके सरदार लालसिंह, मानसिंह और काश्मीर नरेश, महाराज गुलाबसिंहके गवर्नर सरदार प्रेमसिंह—२१ वर्ष तक नज़रबन्द रखे गये थे। सन् १८१८ ई० के बंगाल रेगूलेशनके अनुसार सन् १८७२ ई०में सिक्खोंकी कूका सम्प्रदायके भाई रामसिंह बर्म्मामें नज़रबन्द किये गये थे। सन् १८६७ ई० में, सन् १८२७ ई० के बम्बईके २५ वें कानूनके अनुसार ही पूनाके नाटू भाई नज़रबन्द किये गये। और बङ्गालके सन् १८१८ ई० के तीसरे रेगूलेशनके अनुसारही लाला लाजपतराय और सरदार अजीतसिंहको लाहोरसे मागडले पहुँचाया गया। पीछे सन् १६०६ ई० में

को एक कठिनाई उपस्थित हुई। वे हिन्दुस्थानी सम्पादकोंको इङ्गलैण्ड नहीं भेज सकते थे। अतएव उन्होंने सन् १८२३ ई० में कुछ कठोर नियम बनाकर समस्त समाचारपत्रोंके हाथ पैर जकड़ दिये। जिससे समाचारपत्र अपनी निष्पक्ष सम्मति प्रकट करनेसे वञ्चित रहे।*

एड़मके पीछे लार्ड एमहर्स्ट बड़े लाट हुए। वे एड़मकी भाँति समाचारपत्रोंके गले घोटनेके पक्षपाती न थे, परन्तु फिर भी वे अपने शासनके प्रारम्भमें समाचारपत्रोंकी स्वाधीनताके लिये कुछ नहीं कर सके। क्योंकि उस समय एड़मके बनाये हुए कानूनका भारतवर्षके समस्त प्रान्तके शासकोंने अनुमोदन किया था। इसलिये पहले वे एड़मके चलाये हुए कानूनके अनुसार कार्य करते रहे। पीछे उन्होंने उस कानूनके अनुसार कार्य्य करनेमें कुछ ढिलायी कर दी। कड़े कानूनके कारण उन दिनों समाचारपत्रों पर बड़ा अत्याचार हुआ, पर उनके शासन-कालके पिछले दो वर्षोंमें समाचारपत्रोंके सम्बन्धमें शान्ति रही।

इसके बाद लार्ड विलियम बेन्टिक सन् १८२८ ई०से १८३५ तक भारतवर्षके गवर्नर जनरल हुए। ये समाचारपत्रोंकी

बङ्गालके नो सज्जनोंको इस कानूनके अनुसारही, देशनिकालेकी सजा मिली। सन् १८१६ ई० में 'बम्बै कार्निकल" के भूतपूर्व सम्पादक मिस्टर बी० जी० हार्निमैनको इङ्गलैण्ड भेज दिया। सन् १८१६ ई० में मदरासमें भी ऐसाही कानून बना,जो सन् १८१८का मदरास रेग्यूलेशन—दूसरा कहलाता है।

* बकिंहमके पीछे, बङ्गाल जर्नलके दूसरे सम्पादक मिस्टर सेन्डफोर्ड एसनौटको भी जौन एड़मने इङ्गलैण्ड भेज दिया था।

स्वाधीनताके कुछ पक्षपाती थे। इन्होंने संवादपत्रोंके सम्बन्ध-में कुछ आशङ्का नहीं की। इन्होंने स्पष्ट कहा कि :—"मैंने भारत-वर्षमें कई वर्ष रहकर समाचारपत्रोंसे जितना सीखा है उतना और किसीसे नहीं सीखा।"* इससे वेन्टिकके समयमें अखबारोंक कुछ स्वाधीनता रही; परन्तु थोड़े दिनों पीछेही एक विकट आन्दोलन उपस्थित हुआ। इङ्गलेण्डकी डाईरेक्टर सभाने सैनि-कोंका भत्ता कम करनेका प्रस्ताव किया। बेन्टिक इस प्रस्तावके अनुसार कार्य करनेको तैयार हुए। इसपर चारों ओर आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। किन्तु बेन्टिकने किसी बातपर ध्यान नहीं दिया। वे चुपचाप अखबारोंकी समालोचना पढ़ते रहे और अपना काम भी करते रहे। किन्तु सन् १८३० ई० में इङ्गलेण्डकी डाइरेक्टर सभाने सैनिकोंकी प्रार्थना पर कुछ ध्यान न देकर भत्ता सम्बन्धी अपील खारिज कर दी। इस समय सर्वसाधारण-की जानकारीके लिये, समस्त कागजपत्रोंके प्रकाशित करनेकी आवश्यकता हुई। इससे बेन्टिक बड़ी चिन्तामें पड़े। वे सोचने

* देखो—Kayes' Life & Correspondence of Lord Metcalfe-Vol II P 139, 140—"He (Lord William Bentinck) did not scruple indeed, to say, after he had been some years in India, that he learnt more from it than from all the other sources of information which had been open to him since he assumed the government of the country."

लगे कि समाचारपत्रोंकी स्वाधीनता हरण करनी चाहिये या नहीं। क्योंकि कोर्ट आव डाईरेकृरके कागज़पत्रोंके प्रकाशित करनेपर समाचारपत्रोंमें पहलेसे अधिक आन्दोलन होता। जिससे डाईरेकृर सभाके सभासद सर्वसाधारणकी निगाहमें गिर जाते। अतएव समाचारपत्रोंका मुँह बन्द करना चाहिये या नहीं, इसी सोच-विचारमें बेन्टिक पड़ गये। बहुत सोचा विचारीके पीछे बेन्टिकने यही निश्चय किया, कि एड़मकी भाँति समाचारपत्रोंकी स्वाधीनतामें हस्तक्षेप करना चाहिये।

इस समय सर चार्ल्स मेटकाफ भारतवर्षकी व्यवस्थापक सभाके सभासद थे। इस घटनाके पांच वर्ष पहले मेटकाफ साहबने अपने एक मित्रको लिखा था "यदि मैं गवर्नर जनरल होता तो संवादपत्रोंको स्वाधीनता पूर्वक काम करने देता।" पांच वर्ष पहले मेटकाफ साहबके जो विचार थे, वे विचार इस समयतक दूर नहीं हुए। समाचारपत्रोंकी स्वाधीनतापर कुठार चलनेवाला है, यह जानकर मेटकाफ साहब चुप नहीं हुए। उन्होंने बेन्टिक साहबके मतके विरुद्ध स्पष्ट रूपसे अपनी नीचे लिखी:—सम्मति दी "डाइरेकृर सभाने सैनिक कर्मचारियोंके आधे भत्ते के सम्बन्धमें आवेदन पत्र लौटा दिया है। इस सम्बन्ध में उक्त सभाके समस्त कागजपत्र प्रकाशित करते समय भारत-सरकारको समाचारपत्रोंकी स्वाधीनतामें हस्तक्षेप करनेके लिए उद्यत देखकर मुझे बहुत दुःख हुआ।"

"हमारे इस कामसे सर्वसाधारणमें एक तरहसे नयी

नाराजी पैदा होगी। इस प्रकारका असन्तोष पैदा करना व्यर्थ है।"

"बहुत दिनोंसे हमने सर्वसाधारणको गवर्नमेण्टके समस्त विषयोंकी आलोचना करनेका अधिकार दे रखा है। अब डाइ-रेक्टरोंकी पहली आज्ञासे इस आज्ञामें कुछ विशेष अन्तर नहीं देखा जाता है, कि पहले जैसा आन्दोलन होता रहा, इस समय वैसा न करने दिया जाय।"

"मेरी रायमें भारतके सम्बन्धमें जो आन्दोलन हुआ है उसका फल अच्छाही हुआ है। इससे एक असन्तोष पैदा करनेवाले कार्यपर राय प्रकट हुई है और जिनकी क्षति हुई है, वे भी यह बात मन-ही-मनमें जान गये हैं कि हमारे असन्तोषका कारण सर्वसाधारणको मालूम हो गया है। इससे सरकारकी ओरसे इस विषयपर विशेष ध्यान दिया जायगा।"

"मेरी समझमें एक नयी नाराजी पैदा करनेसे यह अच्छा है कि जिसकी जो सम्मति हो, वह उसको प्रकट कर दे।"

"उपस्थित विषयकी जितनी आलोचना हुई है, मेरी समझमें उससे अधिक आलोचना होनेमें कोई क्षतिकी सम्भावना नहीं है। पहले सैनिकोंमें जो असन्तोष देखा गया था, इस समय वह कम हो गया है। उनकी फरयाद सुनी गयी है। उनकी एक भी दलील नहीं चली। अब उनके लिये यह विषय पुराना पड़ गया है। डाईरेक्टरोंने जो आज्ञा प्रदान की है, उसे सब लोग जान गये हैं। इस समय समाचारपत्रोंमें सैनिकोंके

भत्ता-सम्बन्धी आज्ञा-पत्रके प्रकाशित होनेपर किसी प्रकारकी हानि होगी, ऐसा प्रतीत नहीं होता है। किन्तु इस विषयपर आलोचना प्रकाशित न होनेसे एक नयी नाराजी पैदा होगी।"

मेटकाफ साहबने और भी लिखा कि, "बुराईके बदले, भलाई अधिक देखकरही मैं सदासे अखबारोंकी स्वाधीनताका अनुमोदन करता रहा हूँ और इस समय भी अनुमोदन करता हूँ। पर साथ ही मैं यह भी स्वीकार करता हूं कि प्रजाको स्वतन्त्रताके समान कभी कभी छापेखानेकी स्वाधीनतामें समय विशेष अवसर पर हस्तक्षेप करना ज़रूरी है। किन्तु उपस्थित विषयमें इस तरह से दस्तन्दाज़ी करना मेरी समझमें उचित नहीं जंचता है। अखबारोंकी स्वतन्त्र आलोचना होनेसे गवर्नमेण्टके लिये केवल दो दिनकी विपदकी सम्भावना है, किन्तु स्वाधीन भावसे मत प्रकाशित न करनेसे अधिक विपदकी सम्भावना है। क्योंकि स्वाधीन-आलोचनाके स्रोत बहनेसे हृदयके दूषित भाव भी बाहर हो जाते हैं। साधारण चिन्ता और सहानुभूतिकी गति रोकना असम्भव है। मेरी समझमें सर्वसाधारणकी नाराजीका समाचार-पत्रोंमें प्रकट हो जानाही अच्छा है। असन्तोष प्रकट न होनेसे, असन्तोष स्थायी हो जाता है और चाहे जब वह फूट पड़ता है।" इस भाँति मेटकाफ साहबने छापेखानेकी स्वाधीनताके लिये अपना मत प्रकट किया था। सन् १८३२ ई० में वसन्तकालमें मेटकाफ साहब भारतवर्षकी व्यवस्थापक सभाके प्रतिनिधि-सभापति हुए। उस समय बम्बईके तत्कालीन गवर्नरकी कलकत्ताके एक सम्वाद

पत्रपर कोपदृष्टि पड़ी, क्योंकि कलकत्तेके उक्त समाचार पत्रने बम्बईके गवर्नरके कार्योंकी कड़ी आलोचना की थी। उसने लार्ड विलियम बेन्टिकको लिखा था, कि या तो इस अख-बारके सम्पादकसे जबरदस्ती मुआफी मंगवायी जाय या उसकी स्वाधीनताका लोप किया जाय। उस समय सर चार्ल्स मेट-काफ—स्थानीय गवर्नमेण्टके अध्यक्ष थे, इस पत्रकी नकल उनकी सेवामें उपस्थित की गई। बम्बईके गवर्नरकी प्रार्थना पूरी कर-नेका भार मेटकाफ साहबपर पड़ा। पर उन्होंने इस समय भी अखबारोंकी स्वाधीनता सम्बन्धी अपना मत परित्याग नहीं किया। उन्होंने बम्बईके गवर्नरकी प्रार्थना मंजूर नहीं की। किसी प्रकार-से भी मेटकाफ साहब अपने मतसे नहीं हटे। वे अटल पर्व्वतके समान अपने मतपर डटे रहे।

इस घटनाके पीछे दो वर्षतक बेन्टिक साहब भारतके गवर्नर-जनरल और रहे। इस बीचमें समाचारपत्रों पर कोई आपत्ति नहीं आयी। उनकी स्वाधीनता नष्ट करनेके लिये कोई नया कानून नहीं बना, बल्कि मन्त्री सभाने एडमके प्रचलित किये कानूनको रद्द करनेके लिये कतिपय नियम प्रस्तुत करनेकी आवश्यकता प्रकट की थी। किन्तु कोई नियम नहीं बना। इस समय कलकत्तेकी जनताने प्रेसकी स्वाधीनताके लिये विशेष उत्सुकता प्रकट की। सन् १८३४-३५ ई० के शीतकालमें सर चार्ल्स मेटकाफ प्रयागको रवाने हुए। उस समय जनताने गवनर जनरलको छापेखानेकी स्वाधीनताके लिये एक आवेदना-

पत्र भेजा। यह आवेदनपत्र (मेमोरियल) २७ वीं जनवरी सन् १८३५ ई० को गवर्नर जनरलके पास पहुँचा। गवर्नर जनरलने मेमोरियल भेजनेवालोंको यह उत्तर दिया, कि मन्त्री-सभाका ध्यान छापेखाने सम्बन्धी पहले कानूनकी ओर गया है। गवर्नर-जनरलका विश्वास है कि, थोड़े समयमेंही छापेखानेके सम्बन्धमें एक स्वतन्त्र नियम बनेगा। इस नियमके बन जानेसे आप लोग सभी गम्भीर विषयोंकी स्वतन्त्र आलोचना कर सकेंगे, किन्तु इस "अल्प समय" में ही लार्ड विलियम बेन्टिक इङ्गलेण्ड चले गये और उनके स्थानपर सर चार्लस मेटकाफ गवर्नर जनरल हुए। इतने दिनोंसे मेटकाफ साहबकी छापेखानेको स्वाधीनता देनेकी जो इच्छा थी, उस इच्छाको पूरा करनेका अवसर प्राप्त हुआ। इस समय लार्ड मेकोले मन्त्री सभाके सभासद् थे। उन्होंने भी इस विषयमें मेटकाफ साहबकी सहायता की। एप्रिल मासमें छापाखाना सम्बन्धी नया कानून बना। जिसका सारांश यह है:—"ब्रिटिश राज्यमें जितने समाचार-पत्र हैं या होंगे, उनमें जो पत्र पुस्तक आदि छपेंगे और प्रकाशित होंगे, उनके मुद्रक और प्रकाशकको मेजिस्ट्रेटके सामने अपने नाम, धाम प्रकाशित करने होंगे। जो पत्र, पुस्तक आदि छपेंगे, उनपर मुद्रक और प्रकाशकका नाम रहना चाहिये। जो कोई इस धाराके विरुद्ध कार्य्य करेगा, उसको जुरमाने और जेलकी सजा मिलेगी। संवाद-पत्रोंपर प्रकाशक और छापेखानेके नाम होने-पर भी इस नये आईनके अनुसार मुद्रायन्त्रकी स्वाधीनतामें

कुछ भी हस्तक्षेप नहीं किया जायगा"। मेटकाफ साहबकी यह घोषणा सितम्बर सन् १८३५ ई० से काममें लाई गयी।

मेटकाफ साहबकी उपर्युक्त घोषणासे सर्वत्र आनन्द छा गया। इङ्गलेण्ड और हिन्दुस्तान दोनों स्थानोंमें उनकी प्रशंसा हुई। कलकत्तेके हिन्दुस्तानी और यूरोपियन दोनोंने एक बड़ी सभा करके उनको एड्रेस (अभिनन्दनपत्र) भेंट किया। जिसके उत्तरमें मेटकाफ साहबने सुललित और हृदय ग्राही वक्तृता दी।— उस वक्तृतामें उन्होंने एक स्थानपर कहा था:— "यदि यह कहो कि भारतवासियोंके ज्ञान प्राप्त करनेसे हमारे राज्यके नष्ट होनेकी सम्भावना है, तो मैं ऐसे कहनेवालोंसे यह कहना चाहता हूँ कि ज्ञान विस्तारका परिणाम चाहे जो कुछ हो परन्तु भारतवासियोंमें ज्ञानका फैलाना हमारा आवश्यक कर्त्तव्य कर्म्म है। यदि भारतवासियोंको अज्ञानान्धकारमें रख करही भारतमें ब्रिटिश साम्राज्यकी जड़ स्थायी करनी हो और यहांके निवासियोंको अज्ञानान्धकारमें रखनाही अभीष्ट हो तो भारतवासियोंके पक्षमें हमारी सरकार लड़ेगी।"

"किन्तु मैं अज्ञानावस्थामें अधिक भय देखता हूँ। भारतवासियोंके ज्ञान प्राप्त करनेपर हमारा राज्य और भी दृढ़ होगा। उनके कुसंस्कार दूर हो जायँगे, आपसकी शत्रुताका विनाश होगा। हमारे शासनकी भलाई सब लोग जान जायँगे, अधिक क्या, इससे भारतवासी और अङ्गरेजोंमें परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध होगा। आपसमें जो वैमनस्य है, वह दूर हो जावेगा।

× × × ×

जितने दिन भारतके शासनकी बागडोर मेरे हाथमें रहेगी, उतने दिन भारतका मङ्गल साधन करना मैं अपना कर्त्तव्य समझूंगा। भारतवासियोंके ज्ञानकी उन्नति करना मेरे कर्त्तव्यका मुख्य अङ्ग है। इस कर्त्तव्य कर्मके सार अंशको सम्पादन करनेके लिये मुद्रा-यन्त्रकी स्वाधीनता प्रधान उपाय है। भारतमें हमें इससे बढ़-कर भी उच्च कार्य करने हैं। भारतमें यूरोपियन ज्ञान, सभ्यता, विज्ञान और शिल्पका प्रचार करना है और इनके द्वारा प्रजाकी उन्नति करना भी एक ऊँचे दरजेका काम है। प्रेसकी स्वाधीन-तासे जैसा यह कार्य्य हो सकता है वैसा किसी दूसरे उपायसे नहीं हो सकता है।"* प्रत्येक शासकको मेटकाफ साहबके ऊपर उद्धृत वाक्य अपने हृदयपटलपर अङ्कित करने चाहिये।

* उस समय कलकत्ता निवासियोंमें प्रेसकी स्वाधीनता मिलनेसे अत्यन्त हर्ष हुआ। उन्होंने इस घटनाको सदैव स्मरणीय बनानेके लिये सर्वसाधारणसे चन्दा करके गङ्गाके किनारे, मेटकाफके स्मारकमें एक बड़ा भवन बनाया, जिसका नाम मेटकाफ हाल रखा। और उसमें उनकी मूर्त्ति स्थापित की। मूर्त्तिके नीचे यह खोदा गया था कि सन् १८३५ ई० में ५ वीं सितम्बरको सर चार्ल्स मेटकाफने मुद्रायन्त्रको स्वाधीनता प्रदान की थी। इस हालमें एक पुस्तकालय भी खोला गया था, जिसका नाम "मेटकाफ लाईब्रेरी" था। सर्वसाधारण उक्त पुस्तकालयमें पढ़ते थे। लार्ड कर्जनकी कृपासे मेटकाफ साहबका यह स्मारक मिट गया। मेटकाफ लाईब्रे-रीका नाम "इम्पीरियल लाईब्रेरी" हुआ। मेटकाफ साहबकी मूर्त्ति वहाँसे हटा दी गई। आजकल "इम्पीरियल लाईब्रेरी"—मेटकाफ हालमें ही है।

लार्ड केनिङ्गके शासनकाल तक प्रेसकी स्वाधीनताके सम्बन्धमें कुछ हेरफेर नहीं हुआ। सन् १८५७ ई० में जब राज्यक्रान्ति हुई थी, तब लार्ड केनिङ्गने कुछ दिनोंके लिये मुद्रायन्त्रकी स्वाधीनता हरण कर ली थी। सन् १८७८ ई०में लार्ड लिटनने "वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट्" बनाया। जिससे उस समय देशी भाषाओंके समाचार-पत्रोंके हाथ पैर जकड़ गये यह प्रेस एक्ट् शान्तिके समय बनाया गया था, इससे जनतामें बहुत खलबली मची। उन दिनों इस प्रेस एक्ट्के कारण बङ्ग-भाषाके कितनेही अच्छे अच्छे समाचारपत्र बन्द हो गये। वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट्की ६ वीं धारा वर्त्तमान प्रेस एक्ट्से कुछ मिलती जुलती हुई थी। उस धाराका भावार्थ यह है :—"ब्रिटिश भारतकी देशी भाषाके किसी समाचारपत्र, पुस्तक या कागज़में गवर्नमेण्टके प्रति किसी प्रकारका राजविद्रोह और असन्तोष प्रगट किया जायगा, अथवा सार्वजनिक शान्ति नष्ट की जायगी या किसी राजकर्मचारीके कामपर आघात पहुंचानेके निमित्त कुछ छापा जायगा अथवा कोई कारटून छापा जायगा तो जिस पुस्तक अथवा अखबारमें ऐसी बातें छपेंगी, उस अखबार और पुस्तकको मुद्रण करनेवाले छापेखानेका सब सामान गवर्नमेण्ट जब्त कर लेगी। समस्त देशी अखबारोंके प्रिन्टर और प्रकाशकोंको जिला-मेजिस्ट्रेट अथवा राजधानीके पुलिस कमिश्नरके सामने उपस्थित होना पड़ेगा तथा मेजिस्ट्रेटके कथनानुसार रुपया भी जमा करना होगा। एक प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर करने

पड़ेंगे। यदि कोई समाचारपत्र राज्य भक्तिके विरुद्ध, साधारण शान्तिके विरुद्ध, अथवा गवर्नमेण्टके कर्मचारियोंके शासन-कार्य्यके विरुद्ध कुछ लिखेगा तो उस संवाद-पत्रके प्रिन्टर और प्रकाशकका जो रुपया जिला मेजिष्ट्रेट अथवा पुलिस कमिश्नरके यहाँ जमा होगा, वह जब्त कर लिया जायगा।"*

---

* लार्ड लिटनके वर्नाक्यूलर प्रेस एक्टके विपक्षमें प्रायः सभी प्रान्तिक सरकारोंने अपनी सम्मति दी थी। मदरासके तत्कालीन गवर्नरने लिखा था :—"I ld the Vernacular Press to be useful indication f the under-currents which may be running through the mass of Indian population." अर्थात् मेरा मत है, कि भाषाके पत्र भारतीय जन साधारणके भावोंके स्रोतके उपयुक्त लक्षण हैं। मदरास सरकारके सदस्य मिस्टर राबिन्सनने लिखा था:—"We possess in it (Vernacular Press) a useful barometer of native feeling and sentiment" अर्थात् भारतनिवासियोंके भावों और विचारोंको जाननेके लिये भाषाके पत्र हमारे पास उपयुक्त यन्त्र हैं। इस भाँति उस समयके भारत-सचिव वाईकौन्ट क्रैनब्रुकने लार्ड लिटनको जो खरीता भेजा था, उसमें लिखा था :—"All the most experienced Indian Administrators have felt that the great difficulty of Indian Administration is difficulty of ascertaining facts of social condition and political senti

तत्कालीन भारत सचिवतकने कहा था कि देशी समाचारपत्रोंसे समाजकी सच्ची अवस्था ज्ञात हो जाती है। पर लार्ड लिटनने एक न सुनी और वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट पास करही दिया। पीछे लार्ड रिपनके समयमें यह प्रेस एक्ट रद्द हो गया। प्रेस एक्टकी १२४ वीं धारा बहुत दिनतक बेकाम पड़ी रही। सहवास समिति (Age of Consent Bill) के विरोध करनेपर पहले सन् १८९१ ई०में इसके अनुसार बङ्गला-बङ्गवासी पर मुकदमा चला था परन्तु हलकीसी मुआफी मांगने पर उसका छुटकारा हुआ। पीछे

---

ment and that the Vernacular Press has always been considered one valuable means of getting at these facts as is shown by your Excellency's Government by that of your predecessor's and by this office by a reference to the translated extracts of native newspapers, which are regularly supplied to you" इसका भावार्थ यह है कि बड़े अनुभवी भारतीय शासकोंने यह जाना है कि भारतीय शासनकी बड़ी कठिनाई सामाजिक अवस्था और राजनीतिक विचारोंके जाननेकी कठिनाई है। और ऐसी बातोंके जाननेके लिये भाषापत्र सदा उपयुक्त साधन समझे गये हैं। और यह बात श्रीमान्‌की सरकार और श्रीमान्‌से पहलेकी सरकार और इस इण्डिया आफिसने भी स्वीकार की है।" लार्ड लिटनके "वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट"के विरुद्ध स्वर्गीय बाबू लालमोहन घोषने इङ्गलेण्डमें आन्दोलन किया था।

सन् १८९७ ई०में इस धाराके अनुसार सम्पादक-सम्राट्, राष्ट्र-सूत्रधार अगणित भारतवासियोंके हृदय-सम्राट लोकमान्य तिलक महोदयपर मुकद्दमा चलाया गया था। जून सन् १९०८ ई० में (News Papers Incitement to Violence Act) बनाया गया। इस एक्टके बनानेका तात्पर्य्य यही था कि, जो अखबार मार-काटका उपदेश दें, उनपर मामला चलाया जाय। इसके पीछे सन् १९१० ई० में वर्त्तमान प्रेस एक्ट बना है, जिसके कारण प्रेस और समाचारपत्रोंसे जमानत माँगी जाती है।* जिससे छापेखाने और समाचारपत्रोंकी स्वाधीनता हरण हो गयी है। ×

* सन् १९०६ ई० तक जो मनुष्य चाहता था, प्रेस या समाचारपत्रके मुद्रक होनेका फार्म भरकर पेशकारको दे देता था और मेजिस्ट्रेट साहबके सामने फार्म पहुँचनेपर कटहरेमें खड़ा होजाता था तथा पूछनेपर कहता कि मैं प्रिण्टर अथवा पब्लिशर बननेका डिक्लेरेशन देता हूँ। बस मेजिस्ट्रेट साहब फार्मपर मुहर करके दरखास्त मंजूर कर देते थे और प्रिण्टर अथवा पब्लिशरका काम होजाता था। पर सन् १९०७ ई० से प्रिण्टरको कैदीकी तरह फार्मपर अङ्गूठेका निशान बनाने और सन् १९०८ ई० से किसी वकीलसे शनाख्त करानेकी आवश्यकता पड़ती है। ऐसे बहुतसे मामले होते हैं, कि जिनमें वकील बिना पहली जान पहचानके २) लेकर शनाख्त कर देता है। इस पुस्तकके लिखे जानेके पीछे वर्त्तमान प्रेस एक्ट रद्द होगया है।

× इस प्रेस एक्टके कारण भारतवर्षके कितनेही अच्छे अच्छे समाचारपत्र भी बन्द होगये हैं। सर हेनरी काटनने अपनी पुस्तक "न्यू-इण्डिया"—(नवीन भारत) में भारतवर्षके समाचारपत्रोंके सम्बन्धमें लिखा है:—"भारतवर्षके समाचारपत्र, झगड़े, कठिनाइयों और परिश्रमयुक्त प्रयत्नोंसे निकलकर एकही पीढ़ीमें एक प्रबल अङ्ग बन गये हैं। ये बड़ी

इस एक्‌के विरुद्ध देशमें बहुत आन्दोलन हुआ है पर अभी तक इसका कुछ परिणाम नहीं हुआ है। इस एक्‌के रद्द होनेकी अत्यन्त आवश्यकता है। देखिये कब होता है? वर्त्तमान प्रेस एक्‌से समाचार पत्रों और सामयिक पुस्तकोंकी उन्नतिमें भारी रुकावट है।

स्वतन्त्रता और उत्साहसे सरकारके कार्य्योंकी समालोचना करते हैं, सरकारी अफसरोंके दोषोंको निरन्तर रोकते रहते हैं और देशकी सब जातियोंमें अपना प्रभाव फैलाते जाते हैं। भारतवासी भी इनके उत्साहसे प्रोत्साहित होकर जिस सामर्थ्य और देशभक्तिसे ये चलाये जा रहे हैं, उससे अत्यन्त प्रसन्न हैं।' इसके आगे सर हेनरी काटन, समाचारपत्र और व्याख्यानोंकी स्वतन्त्रताको कम करनेके कानून आदि बननेकी शिकायत करके आगे लिखते हैं कि प्रजाके प्रत्येक आन्दोलनने भारतवर्षके समाचारपत्रोंके बल और प्रभावको उन्नत कर दिया है, समाचारपत्रोंकी सामर्थ्यके साथही साथ उनकी एकता भी बढ़ती जाती है। कलकत्ता, मदरास, बम्बई, लाहौर, लखनऊ आदिके समाचारपत्रोंमें सर्वत्र एकसी प्रणालीके लेख लिखे जाते हैं। भारतवर्षके प्रत्येक बड़े नगरमें समाचारपत्र छापे जाते हैं, जिन सबका आशय और अभिप्राय समानही है। क्योंकि वे सब जातीयताके एकमात्र पोलीटिकल विचारकी पुष्टिमें दत्तचित्त हैं।"

(५)

सम्पादकका कर्त्तव्य-कर्म ।

No honest Editor has any thing to fear, to the dishonest we desire to give neither sympathy nor protection—" The Hon'ble Sir Harold Stuart.

पत्र सम्पादनका कार्य्य कुछ खिलवाड़ नहीं है। यह कार्य्य बहुत कठिन और जिम्मेदारीका है। एक कविकी भाँति केवल अपनी प्रतिभाके सहारे ही किसी सम्पादकको सफलता प्राप्त नहीं हो सकती है। प्रतिभाके साथ ही साथ सम्पादन-कार्य्य करनेवालोंको अगाध ज्ञानकी आवश्यकता होती है। जिस भाँति एक कविकी अश्लील कवितासे, चित्रकारके अश्लील चित्रसे, सर्वसाधारणकी रुचि बिगड़नेकी सम्भावना होती है। उसी प्रकार एक सम्पादकके लेखोंसे बुरे प्रभावकी सम्भावना रहती है। जो सम्पादक अपने देशकी परिस्थितिको बिना पहचाने और बिना समझे बूझे ही अपनी सम्मति प्रकट करता है, वह लाभके बदले उलटी हानि पहुँचाता है। प्रभावशाली वक्ताकी भाँति सच्चे सम्पादकका भी मुख्य कर्त्तव्य है कि जिस विषयपर वह सम्मति दे, उसपर सोच विचार कर अपना मत प्रकट करे। जिस विषय पर कलम उठावे, उस विषयकी पूरी जानकारी हो। समाचारपत्रोंका सम्पादन कार्य बड़ी टेढ़ी

वीर है, पराधीन देशके समाचारपत्रोंका सम्पादन करना तल-वारकी कठिन धारपर चलना है।

अङ्गरेजीके प्रसिद्ध लेखक टोमस कारलाईलके इस कथनमें कुछ भी सन्देह नहीं है कि, पत्र सम्पादक सच्चे सम्राट और धर्मो-पदेशक होते हैं। वास्तवमें देखा जाय तो सम्पादकका बड़ा कठिन काम है। एक राजा "भय बिनु नहीं होत प्रीति"— इस वाक्यका अवलम्बन करके डरा धमकाकर अपनी प्रजाको काबूमें लाता है। बन्दूक, तोपें और सङ्गीनोंसे प्रजामें शान्ति बनाये रखनेकी चेष्टा करता है। पर एक सम्पादक अपनी स्पष्ट-वादिता और निर्भीक् लेखनीसे सर्वसाधारणके हृदयपर स्वतः ही वह अधिकार प्राप्त कर लेता है, जिसके लिये बड़े बड़े बल-शाली सम्राट तरसते हैं। जो स्वाभाविक सम्मान एक निर्भीक् सम्पादकको प्राप्त होता है, वह बड़े बड़े बलशाली सम्राटोंको कदापि नसीब नहीं हो सकता है। तोप, बन्दूकें बमके गोले और हवाई जहाजोंसे किसी देशके निवासियोंको भले ही अपने वशमें कर लिया जाय पर स्वाभाविक शान्ति उग्र उपायोंसे कभी स्थापित नहीं होती है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमारे देशमें देख-नेमें आता है। स्वर्गीय लोकमान्य तिलक अगणित भारतवा-सियोंके हृदय सम्राट क्यों कहलाये, केवल अपनी स्पष्टवादिता और निर्भीक् लेखनीके कारण ही। आज महात्मा गान्धीजीके इशारेपर समस्त भारतवर्ष क्यों चल रहा है, केवल उनकी स्पष्टवादिता और निर्भीक् लेखनीके कारणही।

एक समय बङ्गभाषाके समाचारपत्रोंमें *"सोम प्रकाश" का नाम इस लिये बहुत था कि उसके सम्पादक बाबू द्वारकानाथ विद्याभूषण बड़े निडर थे। वे शिक्षा विभागमें सेवा करते हुए भी शिक्षा विभागके अफसरोंकी त्रुटियां अपने अखबारमें छापनेसे नहीं चूकते थे।× एक बार उन्होंने शिक्षा विभागके तत्कालीन

* पाठक "भारतमें प्रेस एक्ट" शीर्षक लेखमें पीछे पढ़ चुके हैं कि लार्ड लिटनके समयमें "वरनाक्यूलर प्रेस एक्ट" पास हुआ था। उक्त एक्टके कारण ही उस समय बङ्गभाषाके "सोम प्रकाश" "सहचर" "सुलभ समाचार" आदि अनेक पत्र बन्द हुए थे।

× सन् १९१० ई० के "मार्डन रिव्यू" में पं० शिवनाथ शास्त्री ने "The men as I saw,. नामका एक लेखमाला लिखी थी, उसमें द्वारकानाथ विद्याभूषणका भी वृत्तान्त लिखा था। जिसमें पं० शिवनाथ शास्त्रीने लिखा है कि एक दिन मैं अपने पिताकी एक चिट्ठी लेकर वुडरो साहबके यहाँ गया था, साहब बहादुरने मुझसे स्लीपर (चट्टी जूता) पैरोंसे उतारनेके लिये कहा। मैं जूता उतारनेके लिये सहमत नहीं हुआ। उक्त साहब बहादुरने मेरे हाथसे पत्र लेना स्वीकार नहीं किया। इस पर साहब बहादुर और पं० शिवनाथ शास्त्रीमें नीचे लिखी हुई बातें हुईं।

मिस्टर वुडरो—"तुमने मेरा अपमान किया है। शिवनाथ शास्त्रीः—कैसे ?—मिस्टर वुडरोः—',तुमने जूते (स्लीपर) क्यों नहीं उतारे" ? शास्त्रीने साहबके हेड क्लार्ककी ओर इशारा करते हुए कहा कि बाबूने भी अपने जूते नहीं उतारे हैं, क्या इन्होंने भी आपका अपमान किया है ?—मिस्टर वुडरोः—वे जूते हैं, पर तुम स्लीपर पहने हुए हो, क्या तुमको मेरे दफ्तरका यह नियम नहीं मालूम है कि स्लीपर पहने मैं किसीको अपने दफ्तरमें नहीं आने देता।" शास्त्रीः—"नहीं जनाब ! मैंने अपने जीवनमें

इन्स्पेक्टर, मि० बुडरौकी करतूत तक अपने अखबारमें छापी थी। यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये, कि मि०बुडरौके अधीनही श्रीद्वारका नाथ विद्याभूषण काम करते थे। मराठी भाषाके प्रचण्ड लेखक पं० विष्णु चिपलूणकर भी नौकरशाहीके अधीन काम करते

ऐसी बात कभी नहीं सुनी कि स्लीपरोंसे किसी मनुष्यका अपमान होता है और जूतोंसे नहीं। आज ही पहले पहले पहल यह बात सुननेमें आयी है। बुडरौः—"क्या तुम अब अपने जूते दफ्तरके दरवाजे पर उतारोगे ?" शास्त्रीः—नहीं जनाब, मैं कभी नहीं उतारूंगा"। बुडरौः—तुम बदमाश लड़के हो—बड़े गुस्ताख हो, तुम कहां पढ़ते हो ?—शास्त्रीः—संस्कृत कालेजमें पढ़ता हूं।" यह कह कर शिवनाथ शास्त्रीने बुडरौकी मेज पर चिट्ठी रख दी, और वहांसे चल दिये। चलती समय बुडरौने शिवनाथ शास्त्रीको फिर बुलाया और कहाः—"तुमने सुना होगा कि राधाकान्त देव बहुत बहुत बीमार हैं। वे तुम्हारे यहांके बड़े आदमियोंमेंसे हैं। मैं उन्हें देखने जा रहा हूं, मेरी गाड़ी पांच मिनिटमें तैयार हो जावेगी। क्या तुम मेरे साथ गाड़ीमें उन्हें देखने चलोगे ? शास्त्री—नहीं मै नहीं जासकता हूं, मुझे अपनी क्लासमें पहुंचना है। मुझे पहले ही बहुत देर हो गयी है। बुडरौ—"मान लो कि यदि तुम वहां चलो तो वहां तुम जूते उतारोगे या नहीं। शास्त्रीने यहां पर साहब बहादुरकी इस शङ्काका विशेष रूपसे समाधान करना चाहा, इस पर बुडरौने कहा कि मैं ये सब बातें नहीं सुनना चाहता। तुम हां या ना एक उत्तर दो। शास्त्री "हां हां; जूते उतारूंगा।" बुडरौ—तब तुम मेरे यहां कमरेमें आनेके पहले जूते क्यों नहीं उतारते" ? शास्त्रीः—जब आप मुझे कुछ कहने ही नहीं देते तब क्या जवाब दूं ? बुडरौः—"अच्छा तुम अपने कालेजको जाओ। तुम बड़े शैतान लड़के हो" यह घटना बा द्वारकानाथ विद्याभूषणने अपने अखबारमें छापी और उस पर अपनी खरी सम्मति प्रगट की।

हुए भी, अपने अखबारमें नौकरशाहीके प्रतिकूल अनेक विषयोंपर सम्मति प्रकट करनेमें नहीं रुकते थे। "अमृत बाजार पत्रिका" के जन्मदाता बाबू शिशिरकुमार घोष अत्यन्त निर्भीक् सम्पादक थे। सुना जाता है कि, एकबार बङ्गालके छोटे लाट (स्यात् सर एसले एडीन) ने उनके अखबारको आर्थिक सहायता देनी चाही थी तो उन्होंने छोटे लाटसे कहा:—"परमेश्वरके नामपर इस देशमें कम-से-कम एक अखबारको तो स्वतन्त्र रहने दीजियेगा।"

"इण्डियन मिरर" के भूतपूर्व सम्पादक बाबू नरेन्द्र नाथ सेन भी अपने सम्पादकीय जीवनके आरम्भमें बड़े निडर थे। एकबार लार्ड डफरिनने उनसे एक सभामें किसी लेखके विषयमें कहा था, तो उन्होंने फौरन जवाब दिया कि "मैं इन बातोंको सुननेके लिये यहाँ नहीं आया हूँ।" कहनेका सारांश यह है कि सम्पादक को निर्भीक् चित्त होना चाहिये। जो सम्पादक निर्भीक् और स्पष्टवादी होते हैं, उनका जनसमाजमें विशेष आदर और सम्मान होता है। "रिव्यू आव रिव्यूज़" के जन्मदाता सम्पादक मिस्टर डबल्यू-टी० स्टीडकी सफलताका कारण उनकी सहृदयता और स्पष्टवादिता ही थी। हमारे देशमें चाहे स्पष्ट-वादिताके कारण सम्पादकोंको कुछ यन्त्रणाएँ भुगतनी पड़ती हों, परन्तु अन्य देशोंमें स्पष्टवादी सम्पादकोंका विशेष आदर होता है।

जैसे डाक्टर रोगीका इलाज करता है, वैसेही सम्पादक एक जाति और देशकी स्थिति सुधारनेकी चेष्टा करता है। डाक्टरके हाथमें एक रोगीकी जिन्दगी और मौतका दारमदार होता है।

सम्पादकके हाथमें एक जाति और देशका जीवन और मरण होता है। अमेरिकाके प्रसिद्ध विद्वान वेंडल फिलिप्सका कहना है कि मुझे समाचारपत्रोंकी रचना करने दो, मुझे इस बातकी चिन्ता नहीं है कि कौन धर्म अथवा कानूनकी रचना करता है। सम्पादक केवल डाकृरही नहीं होता है, वह एक आदर्श शिक्षक, धर्मोपदेशक और कवि भी होता है।

कविकी भाँति सम्पादकको भी कभी कभी अपनी कल्पना शक्ति और विचारोंका सहारा लेना पड़ता है। अनेक कवियोंकी कल्पना शक्ति एक स्त्रीके मुखको चन्द्रसे बढ़कर बतलानेमेंही समाप्त होजाती है, परन्तु सम्पादककी कल्पना शक्ति और ही ढङ्गकी होती है। सम्पादक अपने कमरेमें बैठा बैठा सोचता है कि जर्मनीमें जहाज बन रहे हैं, इङ्गलेण्डके मन्त्रीमण्डलमें उसपर हलचल मची हुई है। बोलशेविक काबुलकी ओर बढ़ रहे हैं, जापान अपनी शक्ति बढ़ा रहा है, मिश्रमें नवीन जागृति होरही है, आयर्लैण्ड स्वतन्त्रता प्राप्तिके लिये अखाड़ेमें डट गया है। भारतवर्षने संसारमें अपना उचित स्थान प्राप्त करनेके लिये असहयोग आन्दोलन आरम्भ किया है। इन सब बातोंका क्या परिणाम होगा,बस वह अपनी कल्पना शक्ति और अटकलसे बहुत कुछ सच्चाईतक पहुँच जाता है। अपनी कल्पनासे वह बहुत कुछ सच्चे परिणामपर पहुँच जाता है। थोड़े शब्दोंमें सम्पादकका महत्व और कर्त्तव्य इस प्रकार कहा जा सकता है कि, सम्पादकका जीवन बड़ा ही कठिन जीवन होता है। इस जीवन-

में मनुष्यको नैतिकरूपसे बलवान बनना पड़ता है और निष्पक्ष और निर्भीक् भावसे सत्यकी रक्षा करनी पड़ती है। सम्पादकका काम मार्ग प्रदर्शन करना है। वह मौन भावसे देशकी व्यवहारिक सेवा करता है। उसके उपदेशपर कितनेही मनुष्योंका जीवन निर्भर होता है। वह देश सेवक और राष्ट्र निर्माता है। उसे निन्दा, स्तुतिकी आवश्यकता नहीं है। उसमें गुण दोषकी विवेचना शक्ति होनी चाहिये। उसकी तीव्र स्मरण शक्ति होनी चाहिये। पहले लिखा जा चुका है कि सम्पादकीय स्थान अत्यन्त पवित्र होता है। एक डाक्टरके समान सम्पादकका काम अत्यन्त उत्तरदायित्व पूर्ण होता है। यही कारण है कि अमेरिका इङ्गलेण्ड आदिमें नीम हकीम खतरेके समान कोई सम्पादक नहीं होता है।

पहले लिखा जा चुका है कि अमेरिकामें अन्य देशोंके मुकाबिलेमें सबसे अधिक समाचार पत्रोंका प्रचार है। अमेरिकन लोग समाचार पत्रोंके पढ़नेके जितने उत्सुक होते हैं, उतने अन्य देशोंके निवासी नहीं होते हैं। वहाँ अखबार पढ़नेके लिये अमीरसे लेकर गरीब तक सब लालयित रहते हैं। स्त्रियों और बच्चे तक अखबार पढ़ते हैं। मजदूर मजदूरी करने जारहा है पर एक अखबार उसके हाथमें जरूर है। मेहतर झाड़ू देता है और साथही अखबार पढ़ता है। केवल इन घटनाओंसेही ज्ञात होता है कि वहांके निवासी अपने देशके कामोंमें कितना भाग लेते हैं?

अमेरिकामें कोई बिना अनुभव प्राप्त किये ही सम्पादक नहीं

होता है। वहां पत्र सम्पादन कला सिखलानेके लिये विशेष प्रबन्ध है। वहां सम्पादन कला सिखलानेके लिये कितने ही विद्यालय और बिश्वविद्यालय हैं। कमसे कम ३०-३२ बिश्व-विद्यालय ऐसे बने हुए हैं, जिनमें पत्र-सम्पादन कलाका काम सीखना पड़ता है। पत्र-सम्पादन सम्बन्धी प्रत्येक विषयकी उनको शिक्षा दी जाती है। वहां स्कूल कौलेजसे निकलतेही कोई सम्पादक नहीं होजाता है।— एक सम्पादकका मस्तिष्क बिश्वकोष होना चाहिये।

बिना अनुभव प्राप्त किये भले ही कोई सम्पादक होजाय पर इतनी योग्यता होनी कठिन है कि किसी स्वतन्त्र विषयपर अपनी स्वतन्त्र सम्मति दे सके यों दूसरेके सिरपर त्योहार मनाना जुदी बात है। नीचे अमेरिकाके ईलोनीयस (Illionois) विश्वबिद्यालयका कुछ वृत्तान्त लिखा जाता है, उसके पढ़नेसे हमारे पाठकोंको ज्ञात हो जायगा कि पत्र सम्पादनकलाका अमेरिकामें कितना महत्व है।

इलोनीयस विश्वबिद्यालयमें पत्र सम्पादनकला सीखने के लिये प्रत्येक विद्यार्थीको चार वर्ष तक शिक्षा ग्रहण करनी पड़ती है। अङ्गरेजी साहित्य, विदेशी भाषाएं, सम्पत्ति शास्त्र, राजनीतिक विज्ञान और दर्शनशास्त्रका तो अध्ययन करनाही पड़ता है। पर इसके अतिरिक्त सम्पादन कलाका व्यवहारिक ज्ञान विशेष रूपसे प्राप्त करना पड़ता है।—सबसे प्रथम *रिपोर्टर

* रिपोर्टरोंके विषयमें आगे लिखा गया है। जिसके पढ़नेसे पाठकों-

अर्थात् संवाददाताका काम सीखना पड़ता हैं। विद्यार्थीको बतलाया जाता है कि किस प्रकारका समाचार कहांसे और किस भांति संग्रह करना चाहिये ? जब देखा जाता है कि विद्यार्थी इस कार्यमें निपुण होगया है तब उसे संवाददाताके बड़े बड़े काम जैसे बड़ी सभाओंके कार्यकी रिपोर्ट करना अथवा * किसी बड़े नेता, किसी विद्वान तथा किसी शासक से मिल कर किसी विषयपर सम्मति लेना और उसको अपने पत्रमें छापना आदि काम सौंप दिये जाते हैं। इन कार्य्योंको विद्यार्थी अपनी इच्छानकूल स्वतन्त्रता पूर्बक करता है। जिससे उसकी मानसिक शक्तियों का विकास होता है और उसको समाचार संग्रह करनेका चसका भी पड़ जाता है। नियत समयमें जब एक विद्यार्थी इस क्रियामें निपुण होजाता है, तब उसके लिखे हुए समाचार पत्रादि पर विद्यार्थियोंके सामने विचार किया ज़ाता है। विद्यार्थियों में परस्पर उसके लिखे हुए समाचारादि पर वादविवाद होता हैं। और जहां कहीं संशोधनकी आवश्यकता होती है, वहां संशोधन कर दिया जाता है। अध्यापक प्रत्येक विद्यार्थी से उस विद्यार्थीके लिखे हुए समाचार तथा "इन्टरव्यू" के सम्बन्ध

को ज्ञात होता कि अमेरिकाके रिपोर्टर समाचारोंका पता लगानेके लिये अपने प्राणोंतककी परवाह नहीं करते। प्रबन्ध आदि विषयमें आगे लिखा गया है।

* इसको "इन्टरव्यू" कहते हैं। पत्र सम्पादन कलाका आवश्यक अङ्ग है।

में पूछता है कि समाचार ठीक संग्रह किये गये हैं या नहीं "इन्टरव्यू" में प्रश्न करने तथा उत्तर लिखने का ढङ्ग ठीक है या नहीं। इस ढङ्गसे प्रश्नोत्तर करनेसे अन्यान्य विद्यार्थियोंको कार्य करनेमें सुविधा होती है।

इस भांति जब एक विद्यार्थी उपर्युक्त कार्य्योंको सीख जाता है, तब उसको गैली प्रेसके उठाये हुए प्रूफ पढ़नेको दिये जाते हैं। इससे उसका प्रूफ संशोधन तो आता ही है, पर साथ ही उसको यह बात सिखलाई जाती है कि कहाँ पर कौनसा टाईप रहना चाहिये, कौनसे स्थान पर किस टाइपकी कमी है,

इन सब बातोंके आजाने पर उसको सम्पादकीय लेख और सम्पादन कार्य्य सिखलाया जाता है। यह सिखाते समय इसपर विशेष ध्यान दिया जाता है कि किस विषय पर किस भाँतिकी सम्मति देनी चाहिये, पढ़ने वालोंके हृदय पर कैसे लेखोंका प्रभाव होसकता है। शिक्षक विद्यार्थीके लिखे हुए लेखके एक एक पैरेको अत्यन्त सावधानीसे देखता है। जहाँ कहीं किसी प्रकारकी त्रुटि होगई हो, उसको समझाता है। वहाँ पर पत्र सम्पादनकलाके विद्यार्थियोंको "समाचारपत्रोंके इतिहास" का भी अध्ययन करना पड़ता है। पुराने समाचारपत्रों और मासिक पत्रिकाओंकी फाईल भी विद्यार्थियोंको पढ़नी पड़ती है। जिससे पत्र सम्पादन कलाके विद्यार्थियोंको यह पता लग जाता है कि पहले समाचार पत्रोंकी क्या दशा थी, फिर उनमें क्या परिवर्तन होता रहा और इस समय उनकी स्थिति क्या है?

पत्र सम्पादन कलाके सम्बन्धमें सबसे अन्तिम विषय सम्पादकीय प्रबन्ध सिखलाया जाता है, जिसमें पत्रकी नीति स्थिर रखना, लोकमतको जागृत कराना, संवाददाताओंका तथा सम्पादकीय कार्य्योंका सङ्गठन करना तथा पत्र सम्बन्धी सब प्रबन्ध करना सिखलाया जाता है। समझे पाठक, जहां इस भांति सम्पादक होते हैं, वहां समाचार पत्रोंका आदर होना स्वाभाविक ही है*।

---

* यूनाईटेड स्टेट्समें लगभग ६०-६५ विश्व विद्यालय पत्र-सम्पादन कला सिखलानेके लिये हैं। जिनमें पाठ्य पुस्तकें भिन्न-भिन्न हैं। पर विषय सबका एकसाही है। विस्तारके भयसे सब विश्व विद्यालयोंके पाठक्रमका यहाँ उल्लेख नहीं किया है। प्रायः किसी विश्वविद्यालयमें चार वर्षका पाठक्रम है और किसीमें तीन वर्षका है। अमेरिकन लोग पत्र सम्पादन कलाके कितने प्रेमी हैं, पाठकोंको केवल इस घटनासेही इस बातका पता लग जावेगा कि अमेरिकाके प्रधान नगर न्यूयार्कके दैनिक समाचारपत्र "वर्ल्ड" के सम्पादक जोन पुलिजरकी सन् १९११ ई० में मृत्यु हुई। मृत्युके समय सम्पादक पुलिजरने साठ लाख रुपये सम्पादन कलाका विद्यालय खोलनेके लिये दान दिये और किस प्रकार विद्यालय चलाया जाये यह भी ये अपने मित्रोंको समझा गये। पुलिजरके आदेशानुसार न्यूयार्क नगरके कोलम्बिया यूनिवर्सिटी नामक विराट् विश्व विद्यालयके साथ और निरीक्षणमें सन् १९११ की २० सितम्बरको सम्पादन विद्यालय खोला गया। एक डेढ़ मासके भीतरही १०४ विद्यार्थी इस विद्यालयमें दाखिल होगये। इस विद्यालयमें प्रवेश करनेके लिये एक परीक्षा होती है। परीक्षामें उत्तीर्ण होनेपर विद्यार्थी लिये जाते हैं। किन्तु योग्य और अनुभवी पत्रोंके सम्पादक, बिना परीक्षाके भी ले लिये जाते हैं। चीन, जापान, टर्की,

इङ्गलेण्ड आदि देशोंमें पत्र सम्पादन कला कोई पेशा नहीं बल्कि जीवनका श्रेष्ठ कर्त्तव्य समझा जाता है। इस कर्त्तव्य कर्मके सम्पादन करनेके लिये कोरी किताबी विद्याही सहायता नहीं देती है बल्कि उच्च विचार और दृढ़ निश्चयकी भी आवश्यक-कता होती है। इलाहाबाद हाईकोर्टके जज माननीय जष्टिस वाल्शाने सन् १९१९ ई० में जनवरी मासके "हिन्दुस्तान रिव्यू"में "पत्र सम्पादनकला" पर एक लेख लिखा था, उक्त लेखमें उन्होंने लिखा था कि कितनेही लोग अखबारोंमें लिखा करते हैं परन्तु वे अखबार नवीस (Journlatist) नहीं कहे जासकते ।

पर्शिया इत्यादि देशोंके कितनेही विद्यार्थी इसमें पत्र-सम्पादनकला सीख रहे हैं। चार वर्ष तक पढ़ना पड़ता है। चार वर्षके बाद—Bachelor of Literature in Journalsकी डिग्री मिलती है। अमेरिकाके बड़े प्रसिद्ध और योग्य पचीस पत्र सम्पादक, सम्पादनकी व्यवहारिक बातें विद्यार्थि-योंको बतलाते हैं। पत्र-सम्पादनकी प्रणाली बतलाने तथा अध्या-पकोंको सम्मति देनेके लिये न्ययार्क नगर तथा अमेरिकाके अन्य नगरोंके प्रसिद्ध बारह समाचारपत्रोंके सम्पादकोंकी एक कमेटी बनाई गई है। प्रबन्धकार्य कोलम्बिया यूनिवर्सिटीके प्रधानके अधीन हैं। विद्यार्थियोंको देश-देशान्तरके इतिहास, साहित्य, विज्ञान और गणित इत्यादि विषय पढ़ाये जाते हैं। इस विद्यालयमें अधिक समय व्यवहारिक शिक्षामें लगाया जाता है। विद्यार्थी नगरकी घटनाओंकी जाँच करनेको नगरकी गलियोंमें भेजे जाते हैं। जिससे वे भिन्न विषयोंपर लेख लिखना सीखते हैं। न्यू यार्कके थियटरोंके नाटकोंकी तथा विद्वानोंके व्याख्यानोंकी भी आलोचना करनेके लिये उक्त विद्यालयके विद्यार्थी जाते हैं।

अपनेको अखबार नवीस कहना हँसी खेल नहीं है। यह एक जिम्मेदारीकी बात है। कोई यह कह सकता है कि जो नियमित रूपसे किसी पत्रमें काम करते हैं अथवा द्रव्य प्राप्तिके लिये जो पत्रोंके लिये लेख आदि लिखते हैं वे अखबार नवीस हैं। अखबार नवीसोंमें बेशक वे भी अखबार नवीस हैं, जो पेनी एलाइनर अर्थात् टका लाइनके भाव पर लेख लिखने वाले हैं। × × × × लिखनेके लिये जिन सामग्रियोंकी आवश्यकता है वह चार्ल्स लेम्बके शब्दोंमें एक क़लम, एक दावात, कुछ काग़ज़ और कुछ कहने की बात है। × × × ×

कहनेकी बात "निश्चय ही एक बड़ी बात है। × × × × इङ्गलेण्डमें मेरे एक मित्रने मुझसे अपनी आत्मकथामें यह कहा था कि किन उपायोंसे वह एक अच्छा अखबार नवीस होगया है। पत्र सम्पादनकलामें सिद्ध होनेसे पहले उसने भी एक दैनिक-पत्रके एक सम्पादकसे यही प्रश्न किया था कि अच्छे अखबार नवीस होनेके लिये मैं क्या करूं? उसने कितनी ही पुस्तकें लिखी थीं। वे अच्छी पुस्तकें थीं और भारतमें उनका खूब मान भी होता है। परन्तु उससे यही कहा जाता था, कि वे पुस्तकें किसी कामकी नहीं। यह सम्भव था कि कुछ देरके लिये, किसी सम्पादकके यहाँ जाकर अपने लिये वह सहानुभूति प्राप्त करले, परन्तु कमरेके बाहर हुए कि सहानुभूति रफू-चक्कर। यह भी सम्भव है कि उसका नाम सहानुभूति पूर्वक लिया जाये परन्तु बस, इससे अधिक और होना सम्भव नहीं। सम्पादक

जो चाहता है वह यही है, कि उसके मनके लेख हों, ऐसे लेख जिनसे उसके पाठक आकर्षित हों। सम्पादकके पास जब वह व्यक्ति गया तो सम्पादकने उसे यही सलाह दी कि "अध्ययन और मनन करो तथा लिखो। अपने सबसे उत्तम लेख सम्पादकोंके पास बराबर भेजते रहो और अपना नाम उनके सामने रखनेकी चेष्टा करो। तुम्हारे नाम और तुम्हारी लेखन-प्रणालीकी ओर जब बराबर उनका ध्यान आकृष्ट होता रहेगा, तब सम्भव है कि कभी इसकी भी वारी आये कि वह तुम्हारा लेख स्वीकार कर लें। परन्तु इन सब बातोंके ऊपर यह है कि जहाँतक बने किसी विशेष विषयपर खूब ध्यान लगाओ।" वह विषय चाहे नीरस हो, चाहे सड़ा हुआ हो, यदि उसको सुधारते रहे तो एकदिन ऐसा आवेगा कि जब उस नीरस विषयकी ओर भी पाठकोंका ध्यान आकर्षण होगा। जब लोग तुम्हारे खास रङ्गसे परिचित हो जावेंगे, तब तुम्हारे लेखोंकी प्रतिष्ठा होगी।" उस व्यक्तिने सम्पादकका उपदेश ध्यानपूर्वक सुना। उसने एक विषय ले लिया कि "प्रत्येक देशमें वहाँकी सरकारने शराबके व्यापारके लिये क्या प्रबन्ध किया है?" अन्तमें उसे इस विषय-में सफलता प्राप्त हुई। इस भाँति उक्त जज महोदयने एक दूसरा दृष्टान्त दिया है कि "युद्ध आरम्भसे कुछ दिन पहले एक मनुष्य लण्डनमें नाटक लिखनेके लिये सहसा प्रसिद्ध हुआ, उसके नाटकोंने बड़ी ख्याति पायी। इसका रहस्य भी विचित्र है, कि उसकी इतनी ख्याति कैसे हुई? उसे नाटकोंका चसका

था और उसने इस विषयको नियमित रूपसे ले लिया। दस वर्ष तक वह बिलकुल सबसे अलग रहा। उसके पास कुछ थोड़ी बहुत पूंजी थी। एकान्तमें रहकर उसने अध्ययन करना आरम्भ किया। उसने साहित्य और नाटकोंका अच्छी तरहसे मनन किया। अन्तमें वह इस परिणामपर पहुँचा कि पुरानी शैलीको वर्त्तमान शैली और रुचिमें ढाल देनेसे लोग पसन्द करेंगे। उसने प्राकृतिक सौन्दर्य और दृश्य देखनेके लिये यात्रा की। जिससे उसने अन्य देशोंके निवासियोंकी चाल-ढाल और रुचिको पहचाना। वह सब तरहके लोगोंमें घूमता था। दस वर्षतक बिना हिम्मत हारे अविराम परिश्रम करता रहा। इसके बाद सहसा उसका नाटक रङ्गमञ्चपर आया। जनताकी रुचिका उसने अच्छी तरह मनन किया। इस कारण उसे तत्काल सफलता प्राप्त हुई। उसके पहले नाटकको देखकर दर्शक फड़क उठे। उसको बहुत थोड़े समयमें यश और धन दोनों प्राप्त हुए।" यह सच है कि उक्त नाटककारके समान प्रत्येक व्यक्ति दस वर्षका समय किसी कार्यमें नहीं लगा सकता है। परन्तु प्रत्येक कार्य्यके सीखनेके लिये धैर्य्यकी आवश्यकता है। स्मरण रखना चाहिये कि कानूनी व्यवसायकी भाँति, पत्र-सम्पादन कला में भी प्रत्येक व्यक्तिको स्वयंही चेष्टा करनी पड़ती है और बिना किसीकी सहायताके स्वयंही सफलता और निष्फलताका अनुभव उठाते हुए आगे बढ़ना पड़ता है।

उक्त जज महोदयने अपने उस लेखमें एक स्थानपर लिखा है—

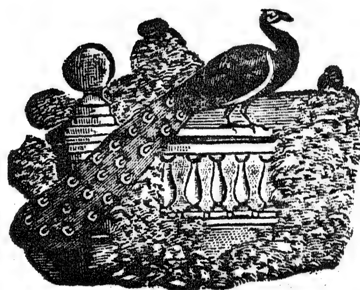
"औक्सफोर्ड विश्व विद्यालय छोड़नेके पीछे मुझे अखबारके दो मनुष्योंके साथ काम करना पड़ा। उन दोनों अखबारोंका ढङ्ग एक, दूसरेसे निराला था। उक्त मनुष्य आपसमें जैसी भिन्नता रखते थे, वैसीही उनके अखबारोंमें भिन्नता थी। मैं उन दिनोंमें "फ्रीलेन्स" अर्थात् मनमाना लिखनेवाला था और प्रायः उन दोनोंकी सहायता करता था। मैंने उन दोनोंकी सहायतासे बहुत कुछ सीखा, किन्तु एकसे प्राप्तकी हुई शिक्षा, दूसरेके काममें नहीं आ सकती थी। किसी बड़े नियमित दैनिक पत्रकी कार्य्य प्रणाली प्रायः एक खास तरहकी होती है और उसका कार्य्य अवश्यही नियमित रूपसे होना चाहिये, परन्त किसी "फ्रीलेन्स" को दैनिक पत्रका सहकारी सम्पादक बना दीजिये, फिर देखिये दूसरे दिन कदाचित् पत्र न निकलेगा। पत्रका काम धीरे-धीरे सीखना चाहिये और उसकी सब मञ्जिलोंको तय करना चाहिये। व्यापारी कमीशनकी बैठकमें किसीने पूछा कि इसका क्या कारण है कि भारतवासी बड़े-बड़े कारबारमें ऊँचे नहीं उठने पाते।" उसी समय किसीने उत्तर दिया :—"क्योंकि वे काम नीचेसे आरम्भ नहीं करते।" कोई मनुष्य किसी दैनिक पत्रमें तब तक सहकारी सम्पादक अथवा मैनेजर नहीं होसकता, जबतक उसने नीचेसे सब मंजिलें तय न कर लीं हों। सम्पादकको भी ये सब काम सीखने पड़ते हैं। यद्यपि कभी कभी ऐसा होता है कि किसी सम्पादकने पहले केवल साहित्य सेवाके अतिरिक्त और कोई काम नहीं किया। परन्तु सम्पादक होनेपर उसने बहुतही

सफलताके साथ यह कार्य्य सम्पन्न किया है। पर ऐसे बहुत कम लोग होते हैं। यह केवल अपवाद है। सब लोग ऐसे नहीं हो सकते हैं। स्मरण रखना चाहिये कि केवल साहित्यकाही खूब ज्ञान होनेसे और अखबारका कुछ अनुभव न होनेसे कोई सफलता पूर्वक सम्पादकका कार्य नहीं कर सकता। सम्पादकके लिये यह आवश्यक है, कि उसे संसार भरका ज्ञान हो और सामाजिक आचार व्यवहारकी भी जानकारी हो। इसके अतिरिक्त प्रत्येक बातका अच्छा अनुभव, व्यापारी बातोंकी अभिज्ञता और कभी कभी मनुष्योंको ठीक तरहसे सङ्गठित करके उनसे काम लेनेकी भी योग्यता होनी चाहिये। साहित्य ज्ञानके अतिरिक्त जब इन बातोंका भी ज्ञान और अनुभव होगा, तब वह एक अच्छा सम्पादक होसकता है।

इसी भाँति लगभग तीस वर्ष हुए कि "टाइम्स" के वर्त्तमान प्रधान सम्पादक मि० विकहम स्टेडने "रिव्यू आव रिव्यूज़" के जन्मदाता और मृत सम्पादक, मि० डबल्यू-टी-स्टेडसे पूछा था कि मैं सम्पादक हो सकूँगा या नहीं। इसके उत्तर मि० डबल्यू टी स्टेडने कहा "सम्पादक, मैं क्या जानूँ आप सम्पादकके योग्य हैं वा नहीं? इसे जाननेका एकही उपाय है। यदि आप वास्तवमें कुछ कहना चाहते हैं तो उसे लिखिये और किसी सम्पादकके पास भेज दीजिये। सम्भवतः वे उसे लौटा देंगे। केवल शब्द अलङ्कारके लिये समय नष्ट मत कीजिये। जो कहना हो बिना आडम्बरके उसे कह डालिये। जब लेख समाप्त होजाय, तब

कल्पना कीजिये कि आपको अपने खर्चसे उसे तार द्वारा आस्ट्रेलिया भेजना है, एक एक अनावश्यक शब्द चुनकर निकाल बाहर कीजिये और विशेषतः विशेषणोंका बहिष्कार कीजिये। इसके बाद यदि कुछ रह जाय तो किसी सम्पादकके पास भेज दीजिये और देखिये क्या होता है? यदि असफल हो तो बार-बार प्रयत्न कीजिये। जबतक आप विशेष कहना न चाहते हों तबतक असफलता रखी हुई है। इस प्रकार प्रयत्न करनेके बाद आप जान सकेंगे कि आप सम्पादक होने योग्य हैं वा नहीं।" इस विचारसे देखें तो हिन्दीमें कितने सम्पादक हैं—जो सम्पादक होनेका दावा कर सकते हैं। यद्यपि आजकल हिन्दीके समाचारपत्रोंकी १५ वर्ष पहलेसे कहीं अच्छी दशा है। कई दैनिक और साप्ताहिक पत्रोंका सम्पादन भी बहुत अच्छा होता है परन्तु फिर भी कई ऐसे लोग सम्पादक बन बैठे हैं, जो पत्र सम्पादन-कलासे नितान्त अनभिज्ञ हैं।

———



सम्पादन-काय ।

पत्र-सम्पादन कला सम्बन्ध भी चार बातें हैं—(१) सफलताके लिये कोई खास रास्ता नहीं है—(२) केवल उद्योग करनेही से खूब उन्नति होसकती है (३) सम्पादकको अध्ययन और अनुभवकी बहुत आवश्यकता है। चौथी बात यह है कि केवल साहित्यका खूब ज्ञान होनेसेही सफलता नहीं मिलती। समयका रङ्ग, और जनताकी रुचिका भी सम्पादकको अच्छा ज्ञान होना चाहिये। क्योंकि पत्र-सम्पादकका मुख्य कर्त्तव्य लोकमतका जागृत करना है। कभी किसी विषयके प्रतिकूल लोकमतं उभारना पड़ता है और कभी किसी विषयके अनुकूल लोकमतंकी रचना करनी पड़ती है। कल्पना कर लीजिये, कि गौड़ मेरेज अथवा पटेल विवाह सम्बन्धी बिल कौन्सिलमें उपस्थित है। उसमें पुरानी चालके हिन्दुओंके धार्मिक भावकी रक्षा न करनेकी व्यवस्था की जायगी। ऐसे समयमें हिन्द धर्मावलम्बी सम्पादकका मुख्य कर्त्तव्य यही है, कि इस मेरेज बिलके प्रतिकूल लोकमत जागृत करनेमें अपनी सब शक्तियाँ लगावे। जहाँतक हो वहाँ तक इसके प्रतिवादमें सभ्य भाषामें प्रबल प्रमाण अपने मतकी पुष्टिमें उद्धृत करे। अकाट्य तर्क और प्रबल प्रमाणोंका विशेष प्रभाव होता है। असभ्य और अश्लील बातें लिखकर गंवार

लोगोंको भलेही प्रसन्न कर लिया जावे, पर सभ्य समाजमें ऐसे लेखक और प्रकाशकोंकी विशेष प्रतिष्ठा नहीं होती है। लोकमत जागृत करनेकी एक और भी रीति—"इन्टरव्यू" अर्थात् साक्षात्कार है, जिसके विषयमें आगे लिखा गया है।

अमेरिकाके लोग सम्पादकीय समाचारपत्रोंमें ताजे समाचार पढ़नेके लिये विशेष उत्सुक होते हैं, इसलिये वहाँ सम्पादक लोकमत जागृत करनेके लिये प्रायः ताजे समाचारोंपर टीका टिप्पणी करते हैं। छोटे छोटे पैरोंमें समाचारोंके सम्बन्धमें अपनी सम्मति प्रकाशित करते हैं। अमेरिकाके निवासी समझते हैं कि हमको सम्पादकीय सम्मतिकी अपेक्षा अपनी स्वतन्त्र सम्मतिसे काम लेना चाहिये। बात भी ठीक है। वहाँ इतनी अधिक पुस्तकें, मासिकपत्र और साप्ताहिक पत्र निकलते हैं कि दैनिक पत्रोंके लम्बे लम्बे लेख पढ़नेकी ओर बहुत कम ध्यान जाता है।

इस कथनसे पाठक यह न समझें कि वहाँके दैनिक समाचारपत्रोंमें कुछ सम्पादकीय विचार होतेही नहीं है। नहीं, यह बात नहीं है। वहाँके दैनिक पत्रोंमें कमसे कम चार और अधिकसे अधिक छः लेख सम्पादकीय होते हैं। सम्पादकीय लेखोंकी उपेक्षा करनेकी यहांतक चाल चल पड़ी है कि इलोनिय स्टेटके एक विख्यात समाचारपत्रको अपने कालमों में मोटे मोटे अक्षरोंमें पाठकोंसे यह प्रार्थना करनी पड़ती है :—
"इस पत्रको तबतक नीचे मत रखना जबतक तुम इसका

सम्पादकीय पृष्ठ न पढ़ लो।" यह पढ़कर हमारे पाठक स्वभावतः ही सोचते होंगे कि जब वहाँ सम्पादकीय विचारोंकी लोग उपेक्षा करते हैं तब कैसे वहाँ लोकमत जागृत किया जाता है? इस विषयका एक उदाहरण पाठकोंकी सेवामें लिखा जाता है, जिससे वे अमेरिकन समाचारपत्रोंकी कार्य्य प्रणाली विशेष रूप-से-समझ सकेंगे। वहाँके Los Anjel Times (लोस एञ्जिल टाईम्स) का पिछला सम्पादक, श्रमी-संगठन Labour Unionism का अत्यन्त विरोधी था। उसने अपने पत्रमें श्रमी संगठनके विरुद्ध सम्पादकीय लेख प्रकाशित करके विरोध उत्पन्न नहीं किया किन्तु उक्त संगठनके विरुद्ध जो समाचार होते थे, उन्हें बराबर प्रकाशित करता रहा। जिससे अनेक व्यक्ति उस दलके विरोधी होगये। मतलब यह है कि अमेरिकन पत्रोंमें चटकीले, भड़कीले समाचार अधिक छपते हैं। पर इस विषयमें वहाँ मत भेद है कि समाचार किसे कहते हैं और कैसा समाचार, समाचारपत्रमें छपना चाहिये? इस विषयमें वहाँके सम्पादन-कला विशारदोंमें बहुत बादविवाद हो चुका है। एक अमेरिकन-पत्र सम्पादकका कहना है कि जो समाचार छापने योग्य हो, उसको छाप दो। पर वहाँ कुछ ऐसे अखबार नवीस भी हैं जो यह कहते हैं कि जिस घटनामें कुछ विशेषता और नवीनता अथवा जो चित्त आकर्षक और कौतूहल जनक अथवा जो अकस्मात् हुई हो—वह समाचार है। मान लीजिये कि एक कुत्ताने किसी आदमीको काट खाया तो यह कुछ समाचार नहीं है, क्योंकि

कुत्ताका यह स्वभावही है कि वह प्राय: आदमीको काटताही है। इसमें विशेषता क्या है ? हाँ, अगर कहीं कोई ऐसा आदमी दिखलायी पड़े जो कुत्तेको काटता हो तो फौरन यह समाचार छपना चाहिये। अमेरिकन-समाचार पत्रोंमें सड़ी गली, मामूली खबरें नहीं छपती हैं। अमेरिकाके सम्पादकोंको अपने रिपोर्टर और संवाददाताओंपर विशेष रूपसे निर्भर रहना पड़ता है। जिसके विषयमें विशेष रूपसे आगे लिखा गया है।

इङ्गलेण्डके पत्रोंमें यह बात नहीं है। वहाँके समाचारपत्रोंमें खबरोंके साथही गम्भीर लेख भी प्रकाशित होते हैं। इङ्गलेण्डमें लोकमत, अमेरिकाकी भाँति खाली खबरोंसेही नहीं बनता है। वहाँकी जनता सम्पादकीय सम्मति पढ़नेकी भी अभ्यासी है। यही कारण है, कि इङ्गलेण्डके समाचारपत्रोंमें गम्भीर विषयोंपर भी लेख होते हैं और ऐसे लेख होते हैं जिनसे पाठकोंको अनेक बातें मालूम हो जाती हैं।

हमारे यहाँ हिन्दी सम्पादकोंकी तो बातही क्या, गुजराती, बङ्गाली और मराठी भाषाके समाचारपत्रोंके सम्पादकोंको भी विशेष वेतन नहीं मिलता है। भारतवर्षके अङ्गरेजी अखबारोंके सम्पादकोंको भी इङ्गलेण्ड, अमेरिका आदि देशके सम्पादकोंके देखते हुए बहुत कम वेतन मिलता है। अमेरिकाके एक सम्पादक मिस्टर आर्थर ब्रिसवेनको यूनाईटेड स्टेट्सके राष्ट्रपति से भी कहीं अधिक वेतन मिलता है। लार्ड मौरले जो किसी समय भारतके स्टेट् सक्रेटरी थे—पहले समाचारपत्रके सम्पा-

दकही थे। हमारे देशमें अभी बहुत कम पत्र-सञ्चालक इस बातको जानते हैं कि पत्रकी उन्नति, अवनति और प्रतिष्ठा आदि बातें एक अच्छे सम्पादकपरही निर्भर हैं। यही कारण है कि इस देशमें, विशेषतया हिन्दीके नित्य नये समाचारपत्र निकलते हैं और ग्राहकोंके अभावका दुःखड़ा रोकर चल बसते हैं। कितने ही हिन्दी पत्र-सञ्चालक, अपने यहाँके सम्पादकको क्लार्कके वेतनसे भी कम देना चाहते हैं। प्रायः बङ्गला और हिन्दीके दैनिक पत्रों के सम्पादकोंको सौ, डेढ़ सौ रुपयेसे अधिक वेतन नहीं मिलता है। यही कारण है कि अच्छी योग्यताके सम्पादक बहुत कम मिलते हैं। भारतकी देशी भाषाओंके, विशेषतः हिन्दी पत्रोंके सम्पादक दो प्रकारके मनुष्य हैं, एक तो वे लोग हैं, जिन्होंने रुपयासे बढ़कर अपनी मातृभाषा और जन्मभूमिकी सेवा करना अपना परम पवित्र कर्त्तव्य समझा है। दूसरे वे व्यक्ति हैं, जिन्हें कहीं कुछ काम नहीं मिला, वेही सम्पादक बन बैठे हैं। किसी किसी हिन्दी पत्रके कार्य्यालयमें देखा गया है, कि सम्पादक ही प्रूफ रीडरका काम करता है, सम्पादकही समाचार छाँटता है, अगर किसी दूसरी भाषाके समाचारपत्रसे कोई लेख अनुवाद करना हुआ तो सम्पादकही अनुवाद करता है और कहीं तो विचारे सम्पादकको क्लर्कतकका काम करना पड़ता है। बहुतसे हिन्दी पत्र-सञ्चालक समझते हैं कि पत्र साप्ताहिक है, सम्पादक बैठा बैठा क्या करेगा? उसको थोड़ाही लिखना पड़ता है अतएव उससे क्लर्कका काम क्यों न लिया जाय? पाठक यह न समझें

कि प्रायः समस्त हिन्दी समाचारपत्रोंकी ऐसी दशा है, कदापि नहीं। इस समय हिन्दीके कई पत्र बहुत अच्छे निकलते हैं। उनके स्टाफमें भी अच्छी अच्छी योग्यताके मनुष्य काम कर रहे हैं। उनके यहाँ सहकारी सम्पादक, प्रधान सम्पादक आदि सभी कर्मचारी अपने कार्य्यमें निपुण होते हैं। प्रत्येक व्यवसायमें एक बात स्मरण रखनी चाहिये कि "जितना गुड़ डालोगे, उतनाही मीठा होगा—" जितने परिश्रम और योग्यतासे जो काम किया जायगा, उतनीही सफलता प्राप्त होगी। समाचारपत्र सञ्चालन में भी सफलता अथवा असफलता इसी नियमपर निर्भर है।

इङ्गलेण्ड, अमेरिका प्रभृति देशोंमें दैनिक पत्रोंका एक प्रधान सम्पादक तो होताही है, जिसे "एडीटर-इन-चीफ" कहते हैं, पर उसकी सहायताके लिये भी कितनेही व्यक्ति रहते हैं जो सहकारी सम्पादक कहलाते हैं। इनको भी वेतन, हमारे देशके प्रधान सम्पादकसे कहीं अच्छा मिलता है। सहकारी सम्पादक भी अच्छे विद्वान और योग्य होते हैं। सहकारी सम्पादक केवल नोट्सही नहीं लिखते हैं किन्तु उन्हें और भी काम करने पड़ते हैं। वे संवाददाता, विशेष लेखक और रिपोर्टरोंके लेखकी खूब जाँच करते हैं और उन्हें घटा, बढ़ाकर शुद्ध करते हैं। जब इतना काम हो चुकता है तब लेख अथवा समाचार कम्पोज़ करनेको दिया जाता है। प्रधान सम्पादक, सम्पादकीय सब कामों का निरीक्षण करता है। वह अपने अधीनस्थ सहकारी सम्पादकोंको नीति बतला देता है कि इसके अनुसार कार्य्य करो।

प्रधान सम्पादककी योग्यता इस बातसे भी जानी जाती है कि वह अच्छे अच्छे सहकारी अपने अधीन नियुक्त करे। सहकारी सम्पादक, मैनेजिङ्ग एडीटर आदि सब लोगोंसे प्रधान सम्पादक समय समयपर विचार करता है। यदि उसका अपने स्टाफके लोगोंसे मतभेद भी हो तो वह जो बात तय कर देता है, उसीके अनुसार सब लोग चलते हैं। फिर बहस और हुज्जत करनेकी जरूरत नहीं है। प्रधान सम्पादककी सहायताके लिये, एक होशियार सेक्रेटरी भी रहता है, वह कुल डाक खोलता है और जिस कर्मचारीकी होती है, उसे अलग अलग छाँटकर बाँट देता हैं। प्रधान सम्पादकके सामने केवल ऐसेही पत्र रखे जाते हैं, जिनपर उसकी सम्मतिकी आवश्यकता होती है। प्रायः प्रधान सम्पादकका काम संध्यासे आराम होता है। वह तबतक सब समाचारपत्रोंको पढ़ डालता है, उनके लेखोंपर अपने मतानुसार अनुकूल या प्रतिकूल सम्मति लिखता है।

सम्पादकके कमरेमें सब प्रकारकी सामग्री रहती है। प्रत्येक पत्रके कार्य्यालयमें एक बड़ा पुस्तकालय होता है। संसारके प्रायः समस्त विख्यात स्त्री-पुरुषोंके चरित्र उसके यहाँ रहते हैं। जिस समय किसी विख्यात पुरुष अथवा स्त्रीके मरनेकी खबर पहुँची, उसी समय वह उनका चरित्र अपने पत्रमें प्रकाशित कर देता है। और उसके चरित्रकी कुछ नयी बात हुई तो वह उसको पीछेसे जोड़ देता है। जिन अखबारोंके कटिङ्गकी ज़रूरत पड़ती है वे भी उसके यहाँ रखे जाते हैं। प्रत्येक विषयकी

सूची उसके यहाँ तैयार रहती है। जिससे काम पड़नेपर कोई बात ढूँढ़नेमें विलम्ब न हो। क्या अच्छा प्रबन्ध है। और हमारे बहुतसे हिन्दी-पत्रोंकी क्या दशा है, सो भी सुनिये। लगभग पन्द्रह सोलह वर्ष हुए कि मैं लाहोरमें एक साप्ताहिक हिन्दी पत्रका सम्पादक हुआ था। मुझसे पहले जो सज्जन उक्त पत्रके सम्पादक थे, वे अङ्गरेजीके कुछ दैनिक पत्र अपने पाससे मँगवाते थे। उनके चले जानेपर पत्र-सम्पादनका भार जब मुझ पर पड़ा तब बड़ी कठिनाई आयी, मैंने अपनी यह कठिनाई उक्त समाचारपत्रके सञ्चालकोंसे कही। तब उन्होंने जो उत्तर मुझे दिया—वह सुनने लायक है। पत्र-सञ्चालकोंने मुझसे कहा:— "आपके पास कलकत्ते के हिन्दी पत्र "भारतमित्र," "हिन्दी बङ्गवासी" आते हैं, और बम्बईका "श्रीवेङ्कटेश्वर-समाचार"—आता हीं है। बस उनमेंसे समाचार काटकर अपने पत्रमें दे दीजिये, ये पत्र, कलकत्ते, बम्बईके हैं, और हमारा पत्र पञ्जाबमें जाता है। इससे लोगोंको पता भी नहीं लगेगा कि कौनसा लेख कहाँसे लिया गया है।" क्या बढ़िया उत्तर है? मुझे हिन्दीके और किसी सम्पादककी तो मालूम नहीं है, किन्तु अपनेपर बीती हुई यहाँ लिखता हूँ कि एक "सद्धर्म प्रचारक" को छोड़कर, जब जब मैं किसी पत्रका सम्पादक हुआ हूँ तब तब मुझे अपने वेतनमेंसे बहुतसा हिस्सा, समाचारपत्र और पुस्तकोंके मँगानेमें खर्च करना पड़ा है—क्योंकि प्रायः हिन्दी पत्र-सञ्चालक पत्रके लिये कुछ सामग्री मंगाना—व्यर्थ व्यय समझते हैं। ये बातें प्रायः

१०-१५ वर्ष पहलेकी हैं, क्योंकि इधर ६-१० वर्षसे मेरा किसी हिन्दी-पत्रसे सम्बन्ध नहीं है। आजकल हिन्दीमें कई अच्छे दैनिक और साप्ताहिक पत्र निकलते हैं, वे इङ्गलेण्ड, अमेरिका आदि देशोंके समान तो नहीं है पर फिर भी वे अपने सम्पादक और पाठकोंकी सुविधाका बहुत कुछ विचार रखते हैं।

सहकारी सम्पादकोंके अतिरिक्त इङ्गलेण्ड, अमेरिका आदिमें पत्र-सम्पादन कार्यके सहायताके लिये "न्यूज एडीटर" "सिटी एडीटर" विशेष लेखक, पुस्तक-समालोचक, उपन्यास लेखक, प्रूफ रीडर आदि होते हैं। "न्यूज़ एडीटर" का काम समाचार संग्रह करना है। वह सवेरेही अपने दफ्तरमें पहुँच जाता है। वहाँ आये हुए सब अखबारोंसे समाचार संग्रह कर लेता है। उस को इसकीही चिन्ता रहती है कि जितने ताजे समाचार मेरे पत्रमें निकले- उतने दूसरे पत्रमें नहीं। वह शहरमें भी चक्कर लगाकर समाचार संग्रह करता है। स्थानीय और बाहरी सब खबरोंको इकट्ठा कर सन्ध्याको छापनेको देता है। सिटी एडीटर— व्यापार सम्बन्धी हुंडी, सट्टे इत्यादिके समाचार संग्रह करके उनपर लेख लिखता है। विशेष लेखक—बड़े जुलूस या और किसी विशेष अवसरपर विख्यात लेखक नियत किये जाते हैं। दिल्लीमें महाराज पञ्चम जार्जके राज्याभिषेकके समय विलायतसे कई समाचारपत्रोंके विशेष लेखक आये थे, जो नित्य प्रति तारों द्वारा दिल्लीसे समाचार भेजा करते थे। पुस्तक समालोचक पुस्तकोंकी समालोचना लिखकर सम्पादकको देते हैं, समालोच-

कोंमें भी भेद होता है, जो जिस विषयका ज्ञात होता है, उससेही उस विषयकी समालोचना लिखायी जाती है। इङ्गलैण्डके निवासी उपन्यास पढ़नेके बड़े प्रेमी होते हैं, अतएव इस कार्य्यके लिये भी वहाँके समाचारपत्र-उपन्यास लेखक भी रखते हैं जो उपन्यासकी रचना करके समाचारपत्रोंको देते हैं, ये उपन्यास, समाचारपत्रके अन्तिम कालमोंमें छपते हैं। कुछ दिन हुए, प्रयागका "लीडर" कभी कभी Our short stories शीर्षकमें छोटी कहानी छापता था। आजकल हिन्दी दैनिकोंमें काशीके "आज" के दूसरे पृष्ठमें कभी कभी छोटी कहानी छपती है। आशा है इस विषयमें "आज" का अनुकरण और भी हिन्दीके समाचारपत्र करेंगे।

यूरोपियन और अमेरिकन समाचारपत्रोंके सम्पादकीय विभागके सम्बन्धकी और भी बहुतसी बातें हैं पर यहाँ कुछ तो स्थानके अभावके कारण और कुछ यह समझकर छोड़ दी गयी हैं कि शायद हिन्दी पाठकोंको वे बातें नीरस जँचे। हाँ एक बात और कहनी है, कि इङ्गलैण्ड और अमेरिकामें शीघ्रही सर्वसाधारण को यह पता नहीं लगता है कि किस पत्रका कौन सम्पादक है? वहाँ सम्पादकोंके नाम सर्व साधारण बहुत कम जानने पाते हैं। इसका कारण यह है कि वहाँ यह बात गुप्त रखी जाती है कि अमुक पत्रका अमुक सम्पादक है। मुश्किलसे दो चार सम्पादकही ऐसे हैं, जिनके नाम सर्वसाधारणको मालूम हैं। हिन्दुस्तानमें यह बात नहीं है। यहाँ पत्र निकलतेही सम्पादकके

नामका पता लग जाता है। इसका कारण यह भी है कि हमारे देशकी परिस्थिति ऐसी है कि यहाँके सार्वजनिक कार्य्य करनेवालों में बहुत थोड़े आदमी होते हैं, जिससे उनका परिचय सर्वसाधारण को शीघ्र होजाता है। इस देशकी परिस्थिति ऐसी नहीं है कि कोई सम्पादक अपने सम्पादन-कार्य्यके अतिरिक्त और किसी सार्वजनिक कार्यमें भाग न ले। यहाँ इच्छा न होनेपर भी अनेक सम्पादकोंको सम्पादन-कार्य्यके अतिरिक्त अन्य सार्वजनिक कार्य्योंमें भी भाग लेना पड़ता है जिसके कारण वे विख्यात होजाते हैं और सर्वसाधारण यह बात जान जाते हैं कि अमुक पत्रका अमुक सम्पादक है।

पत्र-सम्पादन करते समय यह बात भी ध्यानमें रखनी चाहिये कि मासिक, साप्ताहिक और दैनिक पत्रोंके उद्देश्य, अलग अलग होते हैं, अतएव उनके लेख भी भिन्न भिन्न होते हैं। दैनिक पत्रोंमें साधारणतः दो प्रकारके लेख होने चाहिये :— (१) सम्पादकीय मुख्य लेख (Elitorial or Leader Writing) (२) संवाद लेख (News Story Writing) संवाद लेखके अन्तर्गतही देशी, विदेशी तार-समाचार भी आगये। कौन विषय कहाँ रहना चाहिये, यह सम्पादककी रुचि और इच्छापर निर्भर होता है, परन्तु साधारणतः प्रत्येक समाचारपत्रोंके सम्पादकको ध्यान रखना चाहिये कि प्रधान लेख, मुख्य टिप्पणियाँ और विशेष विशेष समाचार ऐसे स्थानपर रहने चाहिये, जो पत्र खोलतेही पाठकोंकी नजर उनपर पड़ जाय

साप्ताहिक पत्रोंमें समाचारोंको विशेष स्थान न देकर सम्पादकीय टिप्पणियाँ विशेष होनी चाहिये। दैनिक पत्रोंका जहाँपर मुख्य उद्देश्य होता है कि ताजे ताजे समाचार पाठकोंकी सेवामें पहुंचें, वहाँ साप्ताहिक पत्रोंका मुख्य उद्देश्य यह होता है कि पाठकोंको सामयिक विषयोंकी पूरी जानकारी प्राप्त होजाय। मान लीजिये कि काउन्सिलमें यह चर्चा होती है कि रेलवोंका प्रबन्ध कम्पनीसे हटाकर- सरकारके अधीन किया जाय। साधारण पाठक यह नहीं जानते, कि रेलका प्रबन्ध कम्पनीके अधीन है अथवा सरकारके। न उन्हें इस प्रबन्धका कुछ अन्तर मालूम है। अतएव साप्ताहिक पत्रके सम्पादकका मुख्य कर्त्तव्य यह है कि ऐसे विषयोंपर लगातार लेख निकालकर, ऐसे गम्भीर विषयको पाठकोंके हृदयङ्गम कर दे। उदाहरणके लिये यहाँ यह लिख देना जरूरी है कि हमारे देशमें पूनाका "मराठा" और मसलीपट्टमका "जन्मभूमि" साप्ताहिक पत्रोंमें ऐसे बढ़िया होते हैं, कि जिनको समाचारपत्र न कहकर सम्मति पत्र कह सकते हैं। और महात्मा गान्धीजीके "यङ्ग इण्डिया" के सम्बन्धमें तो कुछ कहना मानों छोटे मुंह बड़ी बात हैं। हमारे यहाँके हिन्दी-साप्ताहिक पत्रोंको "मराठा" और "जन्मभूमि" का अनुकरण करना चाहिये।

मासिक पत्रोंका मुख्य उद्देश्य अपने पाठकोंके हृदयमें स्थिर साहित्यकी रुचि उत्पन्न करना होता है। मासिक पत्रोंमें जो कुछ लिखा जाता है, वह स्थिर साहित्य तो नहीं होता है पर

इसमें सन्देह नहीं कि मासिक पत्र अपने पाठकोंको रुचि स्थिर साहित्यकी ओर लेजाते हैं। मासिक पत्रोंके लेख पढ़नेसे पाठकोंकी स्थिर साहित्यकी ओर रुचि उत्पन्न होती है। स्थिर साहित्यके रचनेमें मासिक पत्र सहायक होते हैं अतएव मासिक पत्रोंके लेख भी उच्च कोटिके होने चाहिये। संवाद पत्रोंकी भाँति, मासिक पत्रोंकी लेख-प्रणालीके भी दो विभाग होते हैं।

(१) गल्प (Story-Writing) (२) विषयात्मक लेख (Article-Writing)। इसके अतिरिक्त पुस्तक-लेखन-कला (Authorship) इसके अन्तर्गत बहुतसे विषय आ जाते हैं, जैसे पुस्तक आकार, विषयानुकूल कागजका प्रयोग, स्थान विशेषमें चित्रादिका उपयोग, कविताओंका हर प्रकारसे स्थान-भेदमें उपयोग, पुस्तकका नामकरण, गल्पगुच्छ, विविध विषयक लेख, निबन्ध, मुखबन्ध, प्रकरण, नाटक, सिनेमामें बतलाने योग्य नाटक, इत्यादि इन सब विषयोंको विस्तार पूर्वक यहाँ लिखनेका स्थान नहीं है परन्तु मुख्य मुख्य विषयोंपर यहाँ कुछ लिख देना अनुचित न होगा। यह ऊपर लिखा जा चुका है कि सम्पादकका हृदय सहानुभूतिसे परिपूर्ण होना चाहिये। जिसके हृदयमें दीनोंके प्रति दया उत्पन्न नहीं होती है, जो दुःखियोंके प्रति अपनी आँखोंके दो आंसू नहीं बहा सकता है, जिसका हृदय अन्याय और अत्याचारोंकी मात्रा बढ़ते हुए देखकर भी नहीं पिघलता है, भूखसे चटपटाते हुए, अन्नके एक एक दानेके लिये तरसते हुए अपने भाईयोंको मरते देखकर भी जिसका

हृदय पत्थरसे भी अधिक कठोर रहता है, वह कदापि सम्पादक, वक्ता और लेखक नहीं होसकता है। क्योंकि जिसके "पैर न फटी बिवाई, वह कहाँ जाने पीर पराई।" अतएव सम्पादक होनेके लिये चरित्र बल और सहानुभूति होना अत्यन्त आवश्यक है। जिसको सुख दुःखका कुछ अनुभव नहीं है, वह दूसरोंके सुख दुःखकी क्या, चर्चा कर सकता हैं? अस्तु अब फिर हम अपने मुख्य विषयपर आते हैं।

समाचारपत्रोंके सम्पादककी परिस्थिति एक बड़े सेनापतिके समान होती है, जिसके पास बहुत बड़ी सेना युद्ध करनेके लिये हो पर अवसरके अनुकूल वह अपनी सेनाका उपयोग करना जानता हो। सेनापतिकी भाँति सम्पादकको सोचना पड़ता है कौन कौनसे समाचार और लेख पहले देने चाहिये। किस स्थानमें कौनसा समाचार देना चाहिये। कौनसा लेख और कौन सा समाचार ऐसा है जिसको दूसरे दिन प्रकाशित करनेमें कुछ हानि नहीं है। दैनिक समाचारपत्रोंके कालमोंमें लम्बे लम्बे लेख शोभा नहीं देते हैं। जब बड़े लेख आते हैं तब उनकी काट छांट करते समय इस बातका ध्यान रखना पड़ता है कि लेखके मुख्य आशयमें कुछ गड़बड़ न होजाय, उसमेंसे कोई मतलबकी बात छूट न जाय और थोड़े स्थानमें वह लेख आ जाय। दूसरी बात सम्पादकको यह करनी पड़ती है कि सब लेखोंको एकही ढाँचेमें ढालना होता है। यह नहीं कि एक लेखके शब्द बिन्यासकी शैली दूसरे लेखकी शैलीसे मिलती, जुलती न हो।

समस्त लेखोंकी शैली, भिन्न भिन्न ढङ्गकी होनेसे पत्रका सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। जिस तरहसे सेनाके सिपाही कवायद अथवा युद्धके समय एकही पौशाक पहने होते हैं। ठीक वैसेही सम्पादकको अपने पत्रमें लेखोंको एकही पौशाक पहनानी पड़ती है। लेखोंको सजाना पड़ता है। सम्पादकका यह प्रधान गुण है। समाचारपत्र, मासिकपत्र और पुस्तकें आदि सभीके सम्पादनमें इस गुणकी आवश्यकता है।

अमेरिका आदि देशोंमें समाचारपत्रोंमें जो कुछ लिखा जाता है उस सबको "Story" अर्थात् कहानी कहते हैं। कहानी अर्थात् कथा लिखनेकी भिन्न भिन्न प्रणाली होती है। समाचारपत्रोंमें दो तरहकी कहानियाँ लिखी जाती हैं। एक तो नित्य प्रति जो घटनाएं होती हैं वे समाचारके रूपमें लिखी जाती हैं, दूसरी शिक्षाप्रद छोटी छोटी कहानियाँ लिखी जाती हैं।, जो पीछे पुस्तकाकार छापी जासकती हैं, उदाहरणके लिये हिन्दी संसारमें प्रेमचन्दजीकी कहानियाँ विख्यात हैं। इन दोनों प्रकारकी कहानियोंको लिखनेकी प्रणाली अपने अपने ढङ्गके अनुसार जुदी-जुदी होती हैं। दैनिक समाचारपत्रोंमें जो घटनाएं प्रकाशित होती हैं, उनके शीर्षकही ऐसे ढङ्गसे लिखे जाते हैं, जिनपर नज़र पड़तेही पाठकोंको उनका परिणाम ज्ञात होजाता है। जैसे "असहयोग पास होगया—" "महात्मा गान्धीजीकी भाककी वक्तृता"—"मालवीयजी तथा अन्य नेताओंका विरोध।" बस इन शीर्षकोंपर नज़र पड़ते ही पाठकोंको ज्ञात हो जाता है कि

कलकत्तामें लाला लाजपतरायकी अध्यक्षतामें स्पेशिल कांग्रेसका जो अधिवेशन होरहा है, उसमें असहयोग सम्बन्धी प्रस्ताव पास होगया है। महात्मा गान्धीजीने इस प्रस्तावको उपस्थित करते समय ओजस्विनी और विवेचना पूर्ण वक्तृता दी है। मालवीयजी तथा अन्य नेताओंने इस प्रस्तावका बहुत विरोध किया पर फल कुछ न हुआ। इस प्रकार मोटे मोटे अक्षरोंमें शीर्षक देनेसे तत्काल पाठकोंका ध्यान आकर्षित होजाता है।

रही अन्य प्रकारकी कहानियाँ लिखना। इस विषयमें इतना-ही कहना है कि उपन्यास अथवा छोटी छोटी कथाएं लिखते समय जो लेखक, उपन्यास अथवा कथाका फल या परिणाम पहलेही लिख देते हैं वे बड़ी भूल करते हैं। इससे पाठकोंको ज्ञात होजाता है कि आगे क्या होनेवाला है, बस उनका जी ऊब जाता है और वे समस्त पुस्तक अथवा छोटी कहानीको पूरी न पढ़कर अधूरीही छोड़ देते हैं। कथा लिखते समय आरम्भमेंही उसका परिणाम नहीं लिखना चाहिये और न कथाको आरम्भसे लिखिये। कथा मध्य भागसे आरम्भ करनी चाहिये। इससे पाठकोंके हृदयमें मनोरञ्जन और कौतूहल उत्पन्न होता है, वे बारबार इस ढङ्गकी कथा पढ़ते समय सोचते हैं कि आगे क्या होगा? जब कथाका कुछ अंश पढ़ लेते हैं तब वे सोचते हैं कि इसके नायक और नायिका कौन हैं? इसका क्या परिणाम होगा? अन्तमें कथा समाप्त करनेपर सब भेद खुलता है, तब उन-के हृदयपर पूरा प्रभाव होता है। और वह प्रभाव बहुत देरतक

बना रहता है। जो उपन्यास अथवा कथा-लेखक प्रारम्भमेंही अपने उपन्यास अथवा कथाका परिणाम लिख देते हैं उसका असर नहीं होता है। ऐसी कथा अथवा उपन्यास नीरस होते हैं। बङ्ग साहित्य सम्राट श्रीबङ्किमचन्द्र चटर्जीके उपन्यास पढ़ जाइये, आरम्भमें कुछ पता नहीं लगेगा कि उपन्यासका उद्देश्य क्या है और अन्तमें उसका क्या परिणाम होगा। जगत प्रसिद्ध कवि श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुरके उपन्यासों में भी यही बात है। उपन्यास अथवा कथा इस ढङ्गसे लिखी जानी चाहिये कि बीच-बीचमें सिलसिलेवार सब घटनाएं मिल जायं और अन्तमें उनका परिणाम पाठकोंपर विदित होजाय। कथा और उपन्यास-दो प्रकारके होते हैं। भावात्मक और वर्णनात्मक। जिस कथामें यह दोनों बातें होती हैं वह बहुतही मनोरञ्जक होती है। इस विषयमें यहाँ विशेष लिखनेकी आवश्यकता नहीं है। इस विषय पर स्वतन्त्र रूपसे बहुत कुछ लिखा जा सकता है। प्रसङ्गवश यहाँ कथा लिखनेका कुछ आभास मात्र दे दिया है।

लेखन-कला सम्बन्धी बहुतसी बातें हैं पर यहाँ होनहार पाठकोंको केवल इतनाही इशारा काफी है कि जो कुछ वे लिखें इतनी सीधी सादी भाषामें लिखें जो साधारणसे साधारण पाठक उनकी बातको समझ सकें। भाषा कैसी होनी चाहिये, इस विषयमें अनेक लोगोंका मतभेद है। कोई उच्च साहित्यिक भाषाके पक्षपाती होते हैं, कोई इतनी खिचड़ी भाषाके पक्षपाती होते हैं जिसमें मुहाविरे, बे मुहाविरे वाक्यों तकका विचार न रहे।

शुद्ध, अशुद्ध शब्द सब प्रकारके शब्दोंकी भरमार कर दी जाय। मेरी समझमें भाषाका सम्बन्ध विषयके साथ होता है। जैसा विषय होगा, वैसेही भाषा :प्रणालीका अनुसरण करना होगा। पर समाचारपत्रोंके लिये लेख और निबन्ध लिखते समय जहाँ तक हो इतनी सीधी साधी भाषा लिखनी चाहिये जिससे साधारण पाठक भी लेखकके मतलबको सहजमेंही समझ सकें, उन्हें शब्दोंके अर्थके लिये कोशोंके पृष्ठोंमें भटकना न पड़े। फारसीके महाकवि गालिबके शेरोंमें कहीं-कहीं बड़े गम्भीर भाव आगये हैं, उनका समझना बड़ा कठिन है। कहते हैं कि एकबार महाकवि गालिब एक मशाअरेमें गये थे। वहाँ हकीम आगाजान नामक एक सज्जन मौजूद थे। उक्त हकीम महोदय बड़े खुश मिज़ाज़ थे, गालिबकी बारीकियोंसे तंग आकर उन्होंने वहीं, भरी सभामें नीचे लिखा हुआ एक क़ता पढ़ा :—

"अगर अपना कहा तुम आपही समझे तो क्या समझे।
मजा कहनेका जब है एक कहे और दूसरा समझे॥
कलामे मीर समझे और ज़ुबाने मीरजा समझे।
मगर इनका कहा यह आप समझे या खुदा समझे॥"

बात भी ठीक है, समाचारपत्रके पाठक आपकी विद्वत्ताकी परीक्षा करने नहीं बैठे हैं। वे दार्शनिक और वैज्ञानिक सम्बन्धी विचार सुनना नहीं चाहते हैं। वे तो सीधी साधी भाषामें यही जानना चाहते हैं कि संसारकी परिस्थिति क्या है और उसका हमारे देशपर क्या प्रभाव पड़ रहा है?

हमारे देशमें इस समय जो हलचल मच रही है उसका भविष्यमें क्या परिणाम होगा ? व्यापारिक और ओद्यौगिक धन्धोंकी कैसी परिस्थिति है ? बस इसके सिवाय वे और कुछ नहीं चाहते हैं। समाचारपत्रोंके लेखकोंको लेख लिखते समय यही मूलमंत्र ध्यान में रखना चाहिये कि पाठकोंकी रुचि कैसी है और उनकी अपनी रुचि क्या है ? पाठकों और अपनी दोनोंकी रुचिका ध्यान रखकर लिखना चाहिये। हिन्दीके लब्ध प्रतिष्ठित लेखक और भारतमित्रके भूतपूर्व सम्पादक, स्वर्गीय बाबू बालमुकुन्द गुप्तकी सफलताका कारण उनकी भाषा प्रणालीही मुख्य थी। गुप्तजीकी भाषा अत्यन्त सरल और शुद्ध होती थी। "सरस्वती" के प्रसिद्ध सम्पादक और हिन्दी प्रेमियोंके श्रद्धाभाजन, श्रीयुक्त पण्डित महावीर प्रसादजी द्विवेदी लिखित "महाभारत" की भाषा इतनी मनमोहिनी सुन्दर और सरल है कि उसको पढ़नेवाले मुग्ध होजाते हैं, बङ्गला ग्रन्थके आधारपर लिखे जानेपर भी, बङ्गभाषाकी उसमें तनिक भी वू नहीं आयी है। हिन्दीके होनहार लेखकोंको द्विवेदीजी और गुप्तजीकी लेखन-शैलीका अनुकरण करना चाहिये।

समाचारपत्रोंमें "पंच" अर्थात् व्यङ्गोक्ति लेख भी निकला करते हैं। ऐसे अनेक लेखोंमें कारटून भी छापे जाते हैं। पंच लेख लिखना हरेक लेखकका काम नहीं है। जिस किसीको यह दैवी गुण प्राप्त होता है, वही इसमें सफलता प्राप्त कर सकता है। व्यङ्गोक्ति और हास्य पूर्ण लेखोंमें यह खूबी होती है कि सामयिक

घटनाओंको कारटून द्वारा; कविता द्वारा अथवा गद्य लेखों द्वारा इस खूबीके साथ प्रकट करते हैं कि जिसको देखते और पढ़तेही चित्त फड़क उठे। मिस्टर डबल्यू० टी० स्टेड्के "रिव्यू आव रिव्यूज़" में सामयिक घटनाओंपर बड़े अच्छे कारटून निकला करते थे और आजकल भी निकलते हैं। बङ्ग भाषाके "नायक"में भी ऐसेही कारटून निकलते हैं। आजकल हिन्दी भाषाके "विश्व-मित्र"में अच्छे कारटून निकलते हैं। उर्दू अखबारोंमें किसी समय "अवध-पंच"ने इस विषयमें बड़ा नाम पाया था। जब सन् १६०५ ई०में लार्ड कर्जनने कहा था कि "हिन्दुस्तानी झूठे होते हैं तब "अवध पंच" ने इसपर लिखा था कि हिन्दुस्तानी अगर झूठे होते हैं तो आप झूठोंके बादशाह हैं।" उर्दूके प्रसिद्ध कवि अकबर महोदयकी व्यङ्गोक्तिपूर्ण बड़ी अच्छी कविताएँ होती थीं। सन् १८८३-८४ ई० में श्रीयुक्त श्रीराधाचरणजी गोस्वामी द्वारा सम्पादित "भारतेन्दु" नामक मासिक पत्रमें कई अच्छे लेख और दो, एक कारटून निकले थे। पं० प्रताप नारायण मिश्र अपनी कविताओंमें सामयिक घटनाओंका ऐसा सुन्दर चित्र खींचते थे, जिससे पढ़नेवालोंके चित्तपर बहुत देरतक असर रहता था। स्वर्गीय पण्डित रुद्रदत्तजी और स्वर्गीय बाबू बालमुकुन्द गुप्तने भी पंच लेख लिखनेमें अच्छी सफलता प्राप्त की थी। गुप्तजीके "टेसू" और "होली" पाठक अभीतक भूले नहीं हैं। स्वर्गीय पं० मन्नन द्विवेदी गजपुरीने भी इस विषयमें अच्छी सफलता प्राप्त की थी। श्रीयुक्त पं० महावीर प्रसादजी द्विवेदीने सन् १६०२ ई०की "सरस्वती"की

कुछ संख्याओंमें हिन्दी साहित्यकी सामयिक दशापर बड़े बड़े बढ़िया चित्र निकाले थे। यदि द्विवेदीजी महाराजकी लेखिनीसे भारतकी सामयिक घटनाओंपर लगातार वैसेही बढ़िया चित्र कल्पित होते रहते तो आज हिन्दी साहित्यकी बहुत बड़ी कमी दूर होती। इस समय हिन्दीमें हास्यपूर्ण और व्यङ्गोक्ति लेख लिखनेमें मेरे प्रिय मित्र पण्डित जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी और पण्डित बदरीनाथ भट्टका खास हिस्सा है। लखनवी "आनन्द"के सम्पादक पं० शिवनाथ मिश्र, मिस्टर जी० पी० श्रीवास्तव और कानपुरके "वर्त्तमान" के मनसुखाजी भी इस विषयमें सिद्ध हस्त हैं। जिन हिन्दी लेखकोंको हास्य और व्यङ्गोक्ति लेख लिखनेकी दैवशक्ति प्राप्त हो और ऐसे लेख लिखनेकी रुचि हो, उनको गुप्तजीकी "स्फुट कविता" चतुर्वेदीजीकी "गद्यमाला" मि० जी० पी० श्रीवास्तवकी "लम्बी डाढ़ी" और भट्टजीके "मनोरञ्जनसे" मनोरञ्जन करना चाहिये।

हास्य रसमें श्लेष और हाज़िर जवाबीकी भी अत्यन्त आवश्यकता है। बादशाह अकबरके प्रति राजा बीरबलके हाजिर जवाबी किस्से आजतक विख्यात हैं। भारतमें गोस्वामी तुलसी दासजी कृत रामायणकी जिस भाँति चौपाइयोंमेंसे अशिक्षित स्त्री, पुरुषों तकको एक आध टुकड़ा याद होता है वैसेही हिन्दुस्तानमें कोई भी ऐसी जगह नहीं है जहाँ बीरबलकी हाजिर जवाबीके किस्से प्रचलित न हों। हाजिर जवाबी सीखनेसे नहीं आती है, यह एक ईश्वर प्रदत्त गुण होता है। अभी मथुरामें एक असह-

योगीसे मेजिस्ट्रेटने कहा कि "तुम नेक चलनीके लिये जमानत और मुचलका दो।" इसपर उक्त असहयोगी महाशयने उत्तर दिया :—"यदि सरकार पञ्जाबकी भाँति मार्शल ला प्रचलित न करने और खिलाफत सम्बन्धी भूल न करनेकी जमानत और मुचलका दे तो मैं भी जमानत और मुचलका देनेको तैय्यार हूँ। क्या अच्छा जवाब है? मेजिस्ट्रेट चुप्पी साध गये और असहयोगी महाशयको जेलकी सजा दी। यही हाजिर जवाबीका नमूना है। बिना हाजिर जवाबीके भी हास्यरस नीरस हो जाता है। यह हाजिर जवाबी हास्यरस सम्बन्धी वक्तृता और लेखोंमें नवीन चमत्कार लादेती है। हाजिर जवाबीकी न सिर्फ लेख और वक्तृताओंमेंही आवश्यकता होती है परन्तु प्रत्येक कार्य में इसकी आवश्यकता है। गम्भीरविषयोंके वादाविवादमें भी हाजिर जवाबी बड़ी सहायक होती है। कोई आदमी केवल कानूनी किताबें पढ़करही अच्छा वकील नहीं होसकता है अच्छे वकील होनेके लिये हाजिर जवाबीकी भी आवश्यकता है। बिना हाजिर जवाबीके एक वकीलको अपने काममें बहुत अड़चनें आती हैं। इसी प्रकार एक सम्पादक अथवा लेखकको भी बिना हाजिर जवाबीके बहुत दिक्कत आती है। हाजिर जवाबीकी परिभाषा थोड़े शब्दोंमें यह होसकती है कि "जो मौकेपर सूझ जाय वही हाजिर जवाबी है।" करुणा, हास्य सभी प्रकारके लेखोंमें हाजिर जवाबीकी आवश्यकता है। प्रायः देखा जाता है कि जिसकी स्मरणशक्ति तीव्र होती है वह हाजिर जवाब भी

होता है। रहा श्लेष इसके विषयमें यहाँ विशेष कहनेकी आवश्यकता नहीं है। "मैनाने "मैं" "ना" कही दाम बढ़ायो बीस। बकरीने "मैं" "मैं" कही कि आप कटायो शीश।" इस प्रकारके हिन्दी साहित्यमें श्लेषके उदाहरणकी कमी नहीं है। अनुप्रास और श्लेषका हिन्दीमें अटूट भण्डार है।

इस विषयके सम्बन्धमें अन्तमें यही निवेदन है कि चाहे जैसे लेख लिखे जायँ पर लेखक किसी विषयपर अपने विचार स्पष्ट रूपसे जबही दूसरोंको समझा सकता है जब कि वह स्वयं उस विषयको समझता हो। स्मरण रखना चाहिये जबतक लेखक स्वयं अपने विचारोंपर प्रभुत्व नहीं कर लेता है तबतक दूसरोंपर उनका प्रभाव डालना असम्भवही प्रतीत होता है। इसीलिये लेखकको अपने खास रङ्गमें रङ्ग जानेकी आवश्यकता है। कोई मनुष्य सर्वज्ञ नहीं होसकता है। सम्पादक भी इस नियमसे बचे नहीं हैं। हिन्दीके होनहार लेखकोंको चाहिये कि वे अपने को किसी एक रङ्गमें पं० बनारसीदास चतुर्वेदीके समान रङ्ग लेवें। हमारे बहुतसे पाठकोंने उक्त चतुर्वेदीजी (उपनाम भारतीय हृदय) का "प्रवासी भारतवासी" पढ़ा होगा उन्होंने फिजी, दक्षिण अफरीका आदिके प्रवासी भारतवासियोंके सम्बन्धमें जितना विचार किया है उतना हिन्दीके किसी धुरन्धर और सफल सम्पादकने भी विचारा न होगा। अतएव लिखनेसे पहले खूब सोच लो, जितना किसी विषयका अध्ययन और मनन करोगे, उतनाही स्पष्टतासे उस विषयको दूसरेको समझा सकोगे।

लिखना और बोलना दोनों शक्तियाँ ऐसी हैं जिनसे मनुष्य, सामरिक शक्तिसे भी बढ़कर काम कर सकता है। परन्तु ये दोनों शक्तियाँ किसी सहजमेंही प्राप्त नहीं होसकती हैं। इनके प्राप्त करनेके लिये निरन्तर अभ्यास करनेकी आवश्यकता है। बिना अभ्यासके कुछ नहीं हो सकता है। अभ्यास कठिनसे कठिन विषयको भी सुगम कर देता है। ठीकही :—

"कठिन कला हू आय है करत करत अभ्यास।
नट ज्यों चालतु बरतपर साधे बरस छ मास॥'

—o—



रिपोर्टर और संवाददाता।



Edmuud Burke said—"There were three Estates in the Parliament, but in the Reporters' Gallery yonder there sat a fourth Estate more Important far than they all—"Thomas Carlyle.

इङ्गलेण्ड, अमेरिकादि देशोंमें रिपोर्टरोंपर ही दैनिक पत्रोंका विशेष दारमदार होता है। वहाँ रिपोर्टरही दैनिक समाचार-पत्रोंके सम्पादकोंकी दाहिनी भुजा होते हैं। ये रिपोर्टर अच्छे पढ़े लिखे, चलते पुर्जे, होते हैं। वहाँके दैनिक पत्रोंमें कमसे कम १०, १५ रिपोर्टर होते हैं और किसी किसीमें इससे अधिक होते हैं। रिपोर्टर दो प्रकारके होते हैं। एक भीतरी अर्थात् स्थायी और दूसरे बाहरी। भीतरी रिपोर्टरोंको प्रति सप्ताह चारसे छः गिनी तनख्वाह मिलती है। वे शार्टहेण्ड जानते हैं। सम्पादकों का अपने रिपोर्टरोंपर पूर्ण विश्वास होता है। रिपोर्टर भी सच्चे समाचारोंको जाननेके लिये अपने प्राणोंतककी परवाह नहीं करते हैं रिपोर्टरोंको भी पहले काम सीखना पड़ता है। जो नये रङ्गरूट रिपोर्टर के कार्यके लिये भरती होते हैं,उन्हें कुछ दिनोंतक किसी होशियार और अनुभवी रिपोर्टरके अधीन रहकर काम सीखना पड़ता है। प्रायः रिपोर्टर—सिटी एडीटरके अधीन रहते हैं। कहीं कहीं

तो सिटी एडीटरोंकी इच्छानुकूलही रिपोर्टरोंको चलना पड़ता है। रिपोर्टर लोग, समाचार संग्रह करनेके लिये प्रायः थाना, कचहरी और अस्पताल आदि सभी स्थानोंमें चक्कर लगाया करते हैं। प्रायः अखबार नवीसीमें वही सफलता प्राप्त कर सकता है, जिस को समाचार संग्रह करनेका अनुराग होता है। जो तेज तबीयत और परिश्रमी होते हैं, वे रिपोर्टरके कामसे धीरे धीरे प्रधान सम्पादकके पदतक पहुँच जाते हैं। "मैंनचेस्टर-गार्जियन" के प्रधान सम्पादक, सी० ई० स्काट पचास वर्षसे उक्त पत्रमें काम कर रहे हैं और बहुत दिनोंसे प्रधान सम्पादक हैं। पहले उन्होंने साधारण रिपोर्टरकी हैसियतसेही उक्त पत्रमें काम आरम्भ किया था। पीछे धीरे धीरे वे इतने बड़े पदपर पहुँचे। रिपोटर होनेके लिये उच्च शिक्षा की उतनी आवश्यकता नहीं है, जितनी चालाकी और हिम्मतकी आवश्यकता है। समाचारपत्रके रिपोर्टरोंको पुलिसके जासूसोंसे भी अधिक गुप्त बातोंके ढूँढ़नेकी आवश्यकता होती है। अमेरिकामें समाचारपत्रोंकी प्रसिद्ध और उनका फैलाव, उनके नवीन और अद्भुत समाचारोंपर अवलम्बित रहता है। वहाँ ऐसे समाचारोंका संग्रह, पत्र सम्पादनकलाका प्रधान अङ्ग समझा जाता है। जो पत्र डकैती, चोरी और अन्य घटनाओंके समाचार सबसे पहले प्रकाशित करता है, वही पत्र सबसे अधिक बिकता है। अतएव वहाँ अद्भुत समाचारोंके संग्रह करनेके लिये रिपोर्टरोंका रखना अनिवार्य्य होता है। जो खून, डकैती आदि समाचारोंका संग्रह करते हैं, वे फौजदारी (Cri-

minal) रिपोर्टर कहलाते हैं। रिपोर्टरोंको समाचार लिखते समय इस बातका भी विचार रखना पड़ता है कि इतने शब्दों और इतनी लाईनोंसे अधिक लेख न हों। रिपोर्टर लोग प्रायः शार्ट हैण्ड जाने हुए होते हैं। रिपोर्टर लोग अपनी बातोंको बड़ी चतुराईसे और बनाकर लिखते हैं, जिससे पाठक बड़े चावसे उन की बातोंको पढ़ें। लण्डनमें जब पार्लीमेण्टकी बैठक होती है तब प्रायः सभी दैनिक पत्रोंके दो चार रिपोर्टर वहाँ रहते हैं। एक रिपोर्टर शार्टहेण्ड लिखता है, दूसरा उसका लोंग हेण्ड बनाता जाता है। रिपोर्टरके पास एक छोकरा खड़ा रहता है, जो कापी लेकर दूसरे छोकरेको जो बाहर खड़ा रहता है, देता आता है। दूसरा छोकरा तुरन्त बाईसिकलपर बैठकर पत्र कार्य्यालयमें पहुँचता है और लौट आता है। जितनी कापियाँ पहुँचती हैं, वे तुरन्त कम्पोज होती जाती हैं। मतलब यह है कि समाचारपत्रोंके पाठक उस दिनकी कुल काररवाई, उसी दिन सन्ध्याको पढ़ लेते हैं। इसके अतिरिक्त टेलीफोन और तारोंके द्वारा भी समाचार पहुँचाये जाते हैं।

रिपोर्टर लोग अपने समय और कर्त्तव्यका पूरा ध्यान रखते हैं। वे गप्पोंमें अपना समय नहीं बिताते हैं। वे ईमानदार और परिश्रमी होते हैं। वे अपने कामको बड़े चावसे करते हैं। अच्छे अच्छे लोगोंसे उन्हें मिलनेका अवसर मिलता है। डिनर-पार्टी इत्यादिमें उन्हें शामिल होनेका निमन्त्रण आता है। बाहरी रिपोर्टर भी शहरके बाहरके समाचारोंको संग्रह करते हैं। वे

"पैनी ए-लाइनर" कहलाते हैं। "पैनी-ए-लाइनर" उसे कहते हैं, जिसे प्रति लाईन पैनी अर्थात् एक आना पुरस्कार दिया जाता है। कभी कभी इससे भी अधिक उन्हें मिलता है।

रिपोर्टरोंके अतिरिक्त दैनिक पत्रोंके संवाददाता भी होते हैं। संवाददाताओंको भी बड़ी बड़ी तनख्वाह मिलती हैं। संवाददाता बड़े विद्वान और प्रभावशाली होते हैं। पाठकोंको स्मरण होगा कि सन् १९०५ ई० में जब महाराज पञ्चम ज्यौर्ज,—युवराज रहते समय भारतवर्षमें पधारे थे तब उनके साथ कितनेही अखबारोंके संवाददाता आये थे। जिनमें अमेरिकाके भूतपूर्व राष्ट्रपति बड़रो विलसनके प्राईवेट सक्रेटरी मिस्टर बाइरान भी थे। हिन्दुस्तानसे लौटकर अमेरिकाके "सन्" (Sun) नामक अखबारमें मिस्टर बाइरानने हिन्दुस्तानके सम्बन्धमें एक लेख लिखा था, जिसमें उन्होंने भारतकी यथार्थ दशाका बड़े मार्मिक शब्दोंमें वर्णन किया था। केवल इस उदाहरणसेही पाठक समझ लें कि वहाँके कैसे कैसे प्रभावशाली और विद्वान् संवाददाता होते हैं। ये स्थायी संवाददाता कहलाते हैं और दूसरी श्रेणीके संवाददाता वे होते हैं जो युद्ध इत्यादि विशेष अवसरपर जाते हैं।

सैनिक संवाददाता :—सैनिक संवाददाता वे होते हैं, जो युद्धके समय जाते हैं। इन संवाददाताओंको बड़ी कठिनाईयोंसे सामना करना पड़ता है। कभी कभी सैनिक संवाददाता दुश्मन द्वारा कैद कर लिये जाते हैं। पर वे अपनी चालाकीसे छूट आते हैं। यद्यपि इन संवाददाताओंकी सैनिक अफसर बहुत कुछ हिफाजत

रखते हैं, तथापि फिर भी कभी कभी दुश्मनोंके हाथ पड़ही जाते हैं। कितनेही सैनिक संवाददाता भेष बदलकर दुश्मनके कैम्पतक पहुँच जाते हैं। सैनिक संवाददाता भी विशेष सम्मानकी दृष्टिसे देखे जाते हैं। और बड़े बड़े विद्वान सैनिक संवाददाता होते हैं। रिपोर्टर और संवाददाता अपने प्राणोंकी बाजी लगा कर कैसे कैसे भारी काम करते हैं, सो आगे पढ़िये।

———०———



(८)

संवाददाताओंके अद्भुत काम और गप्पें ।



एक संवाददाताकी निराशा ।



"जिन खोजा तिन पाइयां गहरे पानी पैठ ।
हौं वोहरी ढुंड़न गयी रही किनारे बैठ ॥"

(१)

सबसे पहले मैं बतलाना चाहता हूं कि मेरी तरहके संवाद-दाताओंका क्या कर्त्तव्य है ? उसका सबसे पहला कर्त्तव्य किसी डकैती, आग, दुर्घटना और आकस्मिक मृत्युका समाचार अथवा अन्य कोई अद्भुत समाचार हो उसको सीधी सादी भाषामें पूरा पूरा लिखना है। यह समाचार बहुतही तेजीसे लिखना पड़ता है। यह बात बुरी नहीं है, परन्तु जिस ढङ्गसे यह कार्य अमेरिकामें किया जाता है वह यूरोपके किसी देशमें सहन नहीं किया जा सकता, लेकिन अमेरिकाकी बातही निराली है। वहाँके समाचारपत्र ऐसे व्यक्तिओंको जिनकी आदत शराब पीनेकी न हो फौजदारी (Criminal) अथवा जुर्मकी खबर इकट्ठी करनेके लिये नियत करते हैं। दूसरी बात यह है कि जो आदमी ऐसे संवाददाता हो, उन्हें अपने पत्रके लिये अद्भुत,

नवीन, कलेजा दहलानेवाली घटनाएं संग्रह करनेकी स्वाभाविक रुचि होनी चाहिये और ऐसे समाचारोंके संग्रह करनेमें उन्हें व्यय, सङ्कट और कष्टकी बिलकुल परवाह नहीं करनी चाहिये। ऐसे संवाददाताओंको भी विश्वास रहता है कि समाचार संग्रह में वह चाहे जैसा जुर्म तक भी क्यों न कर डालें, पर जिस समाचारपत्रके वे संवाददाता हैं, वह समाचारपत्र अपने सब साधनोंसे उनकी सहायता करेगा। यदि वे किसीके कागज़ पत्रतक चुरानेका भी जुर्म कर डालें तब भी पुलिस पत्रवालोंको खुश करनेके लिये उसे न पकड़ेगी। यदि कोई संवाददाता पकड़ा भी जाय तो भी यही सम्भावना रहती है कि आगे चुनावका ध्यान कर न्यायाधीश (जज) उसे छोड़ देगा। यदि उसने भी न छोड़ा तो रियासतका गवर्नर तो चुनावमें जानेके लिये अवश्यही क्षमा कर देगा। इस कार्य्य के लिये सबही .समाचारपत्र जत्था बनाये रहते हैं। और इस तरहसे जुर्मी संवाददाता अपने कार्यमें बड़ा स्वतन्त्र रहता है। उसका नियन्त्रण करनेवाला केवल सम्पादकही होता है और वह भरसक उसे ऐसे साहसिक कार्य्योंके लिये उसकाया करता है।

जिस पत्रसे मेरा सम्बन्ध था, उसके संवाददाताओंमें मैं प्रधान था। मेरा एक और साथी था। जो दिनको कार्य करता और मैं रातको चक्कर लगाता। दिनके संवाददाताका यह काम था कि मैं रातमें जिन अपराधों अथवा दुर्घटनाओंके समाचार संग्रह करके लाता था, वह उन्हें सबेरेही पत्रमें पढ़े

और मैंने जहाँ अधूराही वर्णन छोड़ दिया हो, उसके आगे पता लगाकर उस वर्णनको लिखे। सन्ध्या समय साढ़े पाँच बजे वह मुझे कार्य्यालयमें मिलता था और अपना लिखा वर्णन दे जाता था। फिर वह दूसरे दिनके प्रातःकालतक स्वतन्त्र रहता था। उस समयसे लेकर दूसरे दिन प्रातःकालके चार बजेतक मैं कार्य्य करता था। हम अपना काम पूरी तरह करते थे। हर रात जो हत्याएं हुआ करती थीं; हत्या चाहें कितनीही रात बीतनेपर क्यों न हों, दूसरे दिन प्रातःकाल उनका पूरा वर्णन लोमहर्षण वृत्तान्त अवश्य छप जाता था। और ऐसी घटनाओं के सम्बन्धमें जिसके साथ हमारी जो भेंट और बातचीत होती थी, वह भी छप जाती थी।

आधी रातके पीछे प्रायः जुर्म कम होते हैं और उसी समय में रातके समाचारोंका वर्णन लिखा करता था। दो बजेतक लिखकर मैं फिर पुलिस लाईनवालोंसे बातचीतमें समाचार पाने चला जाता था। नवम्बरका महीना था, सबेरेका समय था। थोड़ी बूंदा बूंदी होरही थी, मैंने अपना बरसाती कोट पहना, आंखोंको बचानेके लिये टोपको आगे झुका लिया और जेबोंमें हाथ डालकर अंधेरेमें चल पड़ा। गलियाँ बिलकुल सुनसान थीं। कहीं भी आदमी नज़र नहीं आता था। रातके समय अन्धेरेमें जब हाथसे हाथ नहीं सूझता था, यह गलियाँ डरसे खाली न थीं और कई तो सूर्य के प्रकाशमें भी सङ्कट से खाली न थी। रात बड़ी ठंडी थी, अतएव पुलिस स्टेशन पर

जल्द पहुंचनेके लिये मैंने चौड़े मार्गको छोड़ कर अंधेरी चक्कर दार गलियोंका रास्ता पकड़ा। गलीमें थोड़ी दूर घुस कर, मैंने अपनेसे कुछ फासले पर क्रोधमें चिल्लाते हुए एक आदमी की आवाज़ सुनी और थोड़ी देरमें दो आदमियोंको उस तंग गलीमें दौड़ते हुए अपनी ओर आते देखा। मुझे देखतेही वे एक दूसरे से अलग होगये और कुछ चलते हुए, कुछ भागते हुए आगे बढ़कर फिर अन्धकारमें विलीन होगये। इन्हें देखतेही मेरे हृदय में यह बिश्वास होगया कि वे कोई खोटा काम किये बिना नहीं रहेंगे। परन्तु इतनी दूर आगे निकल जाने पर मैंने उनका पीछा करना उचित नहीं समझा। मैं धीरे धीरे आगे चला। मैं कुछ ही दूर आगे बढ़ा था कि यकायक मुझे अपने पास किसी शराबीकी कुछ आवाज़ सुनायी दी:—"क्या फिर लौट आया है? अच्छा यह ले।" मुझे रातमें एक अस्पष्ट आकृति दिखायी दी अन्धेरेमें दो चिनगारियाँ निकलीं और दो कड़क ध्वनि मेरे कानोंमें पड़ी। वार खाली गया। परन्तु दूरी ६ गज़ भी न थी। मुझे सोचने के लिये कुछ भी समय न था। यदि मैं खाली हाथ उसकी ओर बढ़ता तो निस्सन्देह गोलियोंका शिकार होता। चकित और विस्मित होकर मैं एक तङ्ग गलीमें घुस. गया। परन्तु मैंने देखा कि मेरा पीछा किया जारहा है। सौभाग्यसे वह गली एक बड़े मार्गमें जामिली थी। एक पुलिस मैन यह गुल गपाड़ा सुनकर गलीके मुँह पर आकर खड़ा होगया। सबसे पहले उसने मुझे ही देखा। अमेरिकाके पुलिस-

मैन अपनेको ख़तरेमें डालना पसन्द नहीं करते इसलिये जब मैं उसके पाससे निकला तब उसने दूरसे मेरे सिर पर डंडा जमा कर धरती पर मुझे गिरा दिया और जब मेरा पीछा करनेवाला गलीमेंसे निकला तब उसने वही व्यवहार उसके साथ भी करना चाहा, परन्तु इसबार उसका डंडा ठीक स्थान पर न पड़ा। मेरा पीछा करनेवालेके सिर पर लगनेकी जगह. उसका डंडा ऐसा उछला जैसे किसी लोहेके घन पर पड़ा हो। ज्योंही पुलिसमैन दूसरा वार करने लगा त्योंही उस दूसरे आदमी ने पुलिसमैन को कमरसे पकड़ लिया और दोनों पटाकसे धरतीपर आ गिरे। नीचे पड़े हुए पुलिसमैनका सांस फूलने लगा। दैव वश उस पुलिसमैन के एक और साथीने यह दृश्य देख लिया और उसने आकर दूसरे आदमी पर डंडे बरसाने शुरू किये। इस बीचमें, मैं अपना सिर पकड़े भूमि पर बैठाथा, और समझ रहाथा कि मुझे गोली लगी है। पुलिसमैन की यह दशा देखकर मुझे बड़ा दुःख होरहा था। डंडोंकी अच्छी वर्षा होचुकने पर वह आदमी अपने होशमें आया और "बस! बस!" कहकर चिल्लाने लगा। उसे छोड़ कर पुलिसमैनने मेरी ओर देखा और पूछने लगा :—"क्या तेरी भी कुछ पूजा की जाय।" परन्तु मैंने स्पष्ट रीति से इन्कार कर दिया।"

जब उन्होंने मुझे पहचाना तो उन्हें अत्यन्त खेद हुआ और खूब हंसीभी हुई। हम चारों मिलकरअपनी अपनी सुनाने लगे। जिस आदमीने मेरा पीछा किया था वह एकनीग्रो था और उसके

पास ६ गोलीका एक रिवालवर था, उसने कहा :—"मुझे आज रात भर दो बदमाशोंने तंग कर रखा था। जो मुझे लूटना चाहते थे। मैंने उनसे कह दिया था कि यदि तुम आनेका साहस करोगे तो गोली चला दूंगा। शराबके नशेमें चूर होनेके कारण उस अंधेरी रातमें उसने मुझे भूलसे उन बदमाशोंमेंसे एक समझ कर गोली चलायी थी। इस बातको सुनकर हम सबोंने हंसते अपने अपने मार्ग पकड़े।

(२)

इस बार तो हंसी हंसीमें ही टल गयी परन्तु एक और बार ऐसे ही अवसर पर मामला बहुत बिगड़ गया। उसका भी वृत्तान्त सुन लीजिये। अमेरीकामें मजदूरोंका एक संगठन है जिसे "श्रमराज्य समाज"(Knights of Labour) कहते हैं। वह समाज अमेरिकामें बड़ा बल पकड़ रहा था। इसलिये कोठी-वाल अपने विरुद्ध होनेके कारण उसे तोड़ना चाहते थे। कोठी-वाल और मज़दूरोंका खूब झगड़ा चल रहा था। मज़दूर लोग अपने मालिकोंके घरों और कारखानोंमें आग लगा रहे थे और बदलेमें मालिक लोग गुप्तचरोंको रखकर उनके द्वारा गोलियों से मज़दूरोंको मरवा रहे थे, जिस नगरमें मैं रहता था, वहाँ बड़ी अशान्ति थी परन्तु अभी दोनों मालिक और मज़दूरों, में खुल्लम खुल्ला युद्ध प्रारम्भ नही हुआ था। उन्हीं दिनोंमें मज़दूर लोगोंकी एक बड़ी भारी सभा होने वाली थी, सारी जनता की दृष्टि इसी सभाकी ओर लगी हुई थी। उस दिन

मज़दूरोंके प्रधान नेता को अपनी नीति की घोषणा करनी थी। सारे नगर कोही नहीं किन्तु सारे देश की शान्ति और भलाई उसी नीति पर अवलम्बित थी। इसलिये समाजके संचालकोंने उस सभा की कारवाहीको गुप्त रखने की सूचना दी।

इस सूचनासे संवाददाताओं की आखें खुलीं और वे सोचने लगे कि इस सभा की कारवाईका कैसे पता लगया जाय?—सभा सञ्चालकगण भी संबाददाताओंकी ओरसे असावधान न थे। उन्होंने भी बड़ी सावधानीसे कार्य आरम्भ किया। उस नगरमें एक बड़े भारी होटलके बीचमें एक "विशाल नाटक—गृह" था। वह होटल क्या था, एक लम्बा चौड़ा महल था। चारों ओरसे उक्त नाटकगृह कमरोंसे घिरा हुआ था यह प्रबन्ध इसलिये किया गया था कि होटलमें टिके हुए सज्जन भोजनकर चुकनेके पीछे बाहर निकले बिनाही नाटक देख सकें। उस सारे नाटकगृहमें एक दरवाजा था, उजालेके लिये "नाटकगृह"में खिड़कियाँ भी न थी, सिर्फ शीशेदार छतमेंसेही उजाला आता था। सारांश यह कि यह "नाटकगृह"चारों ओरसे बिलकुल बन्द था। मज़दूर लोग जैसी गुप्त सभा करना चाहते थे उसके लिये इससे अधिक गुप्त स्थान मिलना कठिन था। क्योंकि दरवाजे के सामने यदि द्वारपाल खड़े कर दिये जायँ तो चतुरसे चतुर संवाददाता भी घुस नहीं सकते।

जिस समयका मैं वृतान्त लिख रहा हूं, उस समय न्यूयार्कमें एक संबाददाता रहताथा, जिसने गुप्त सभाओंके समाचार ढूंढ़ निकालनेमें बड़ा नाम पाया था। हमारे सम्पादकने उसे तार

देकर बुला लिया। सभासे दो दिन पहले वह पहुंच गया और पहुंचकर उसने अपनी सहायताके लिये एक और आदमी मांगा। उसकी सहायताके लिये मै चुना गया। खुशी खुशी "हम मौक़ा देखने" घर से चले और क्या करना चाहिये, यह सोचने लगे। वहाँ पहुंचकर हम लोगोंने देखा कि एक बार दरवाजे पर पहरेदारोंके खड़े होजाने पर फिर भीतर घुसना असम्भव है। बड़े फाटकके अतिरिक्त उस भवनमें भीतर जानेके लिये और कोई खिड़की अथवा मार्ग न था। अतएव किसी तरहसे उस भवन के भीतर पहुँच सकते थे तो सभा होनेसे पहले ही, पीछे उस के भीतर घुसने का कोई उपाय न था।

सभाके पहले दिन हमें घर देखनेका अवसर मिल गया और हमने निश्चय किया कि ऊपर सीढ़ियोंमें हम दोनों छिप सकते हैं। सीढ़ियाँ जहां खत्म होती थीं, वहां पर्दा पड़ा हुआ था और आशा न थी कि पर्दा उठाया जायगा। सभाके दिन प्रातःकाल वह न्यूयार्क निवासी कुछ रोटियाँ और शराबकी बोतल लेकर पर्देके पीछे जा छिपा। मैं बाहर होटलके आस पास छिपा रहा। इस प्रकार हम लोग सफलताका स्वप्न देख रहेथे और मनहीमनमें अनेक प्रकारकी आशाओंके मोदक बांध रहे थे कि सभाके अधिवेशन होनेके कुछ देर पहले ही एक चतुरमनुष्यने सलाह दी कि एक बार भवनकी खोज होजानी चाहिये। क्योंकि कोई संवाददाता गुप्त रूपसे सभास्थल घुस न आया हो। बस फिर क्या था उस भवनके सब कमरोंकी

खोज होने लगी कहीं कुछ न मिला। फिर खोज करनेवालोंने सीढ़ियों पर दृष्टि दौड़ायी परन्तु कुछ फल न हुआ। वे पर्दे के बिना उठाये चलने ही लगे थे कि नीचेसे किसी की नज़र दो काले बूटों पर पड़ी। बूटोंके देखतेही न्यूयार्क निवासी को धक्के देकर बाहर निकाल दिया, उस समय उसके मुख पर निराशाका राज्य छा रहा था, उसके मुंहमें झाग आरहे थे। और कभी वह अपने आपको और कभी अपने बूट को कोसता था, छः घंटे तक वह सभास्थलमें एकही स्थितिमें पत्थरकी मूर्त्ति के समान खड़ा रहा था और जब वह अपनी सफलताकी आशाके मनमोदक बांध रहा था, तबही उसे ठीक समय पर दस रुपयेके बूटके कारण निराशाका मुँह देखना पड़ा। ऐसी असफलता के समय हम सम्पादक को अपना मुँह दिखाना नहीं चाहते थे, इसलिये वहींसे दूर हटकर "किं कर्त्तव्य विमूढ़" की तरह सोचने लगे कि अब क्या करना चाहिये? एक ही घंटेमें सभाका काम शुरू होनेवाला था हमने निश्चय किया कि हम उस की रिपोर्ट लेकरही छोड़ेंगे, चाहे उसके लिये हमें किसीकी गर्दनही क्यों न तोड़नी पड़े? क्रोधमें आकर वह न्यूयार्कबासी शराबके गिलास पर गिलास पी गया परन्तु मैंने अपने नियमके अनुसार गिलासको छुआतक भी नहीं।

इस तरह असफल होनेपर हमने भयानक उपायोंके अवलम्बन करनेकी ठानी। अपने साथीको वहीं छोड़कर मैं बाजार गया और छिद्र करनेका एक यन्त्र खरीद लाया। हम जानते थे कि

होटल पत्थरकी नींवपर खड़ा है और यह भी हमें मालूम था कि नाटक भवनके नीचे और कमरे नहीं हैं। हमने सोचा कि यदि होटलका फर्श भूमिकी तहसे कुछ ऊँचा हो तो हम सुरङ्ग खोदकर नेपथ्यके नीचे तक पहुँच सकते हैं। वहाँ पहुँचकर नेपथ्य द्वार ढूंढ निकालना या इतना बड़ा छिद्र खोद सकना, जिसमेंसे कुछ सुनाई दे सके कोई कठिन काम न था। वहाँके थोड़ेसे भी सुने हुए वाक्य हमारे लेखके लिये पर्याप्त थे। क्योंकि शेष भाग तो कल्पना द्वारा पूरा किया जासकता था।

यह होटल एक ढालू भूमिपर बना हुआ था। सामनेकी ओर चौड़ा रास्ता था पीछेकी ओर कुर्सीसे १० फीट नीचे एक तङ्ग गली थी। हम समझ नहीं सके कि होटलवाले ढालू होने से क्या लाभ उठाते थे, परन्तु पिछली ओरकी भी नींव टूटी हुई थी और उसमें बड़े बड़े दरवाजे लगे हुए थे। सब दरवाजे बन्द थे और उनमें भीतरसे ताले लगे हुए थे। एक दरवाजेके ऊपर शीशेका रोशनदान था। गलीमें अन्धेरा था, और उसके आसपास पुलिसमैन अथवा कोई विघ्नकारी पुरुष दिखायी न पड़ता था।

अपने हाथमें एक ईंट लेकर मैं अपने अपने साथीके कंधोंपर चढ़ा और ईंटसे रोशनदानका शीशा तोड़ डाला। ईंटकी चोट से शीशा बीचमेंसे किनारे तक फूट गया और चढ़ते हुए बालसूर्य की भाँति दीखने लगा। अपने हाथोंपरसे मैंने अपने दास्ताने उतार दिये और शीशेके टुकड़ोंको निकालकर रोशनदानको

साफ कर दिया। दरवाजेके सिरेपर खड़े होकर मैंने अपने साथीको हाथसे ऊपर खैंचा और क्षण भर भी बिना सोचे हम दोनों उस अन्धेरी कोठरीमें कूद पड़े। उस कोठरीमें कङ्कड़ों, लकड़ीके टुकड़ों और टूटी फूटी चीज़ोंका ढेर था। हम दोनों उसी ढेरपर गिरे। मैंने बड़ी सावधानीसे दियासलाई जलाकर चारों ओर देखा। वह छोटी सी कोठरी न थी किन्तु एक सटा हुआ दालान था और उसके ऊपर होटलके कई कमरे बने हुए थे। वह दालान ईंट पत्थर, चूना और लकड़ीके टुकड़े, लोहे गर्डर और इसी तरहकी और चीजोंसे भरा हुआ था। इस दालानमें पहुँचकर हमलोग निश्चिन्त होगये और समझने लगे कि हमें अब कोई देख नहीं सकता। इस अंधियारे दालानमें खड़े होकर हम सलाह करने लगे कि अब आगे क्या करना चाहिये? मेरा साथी बड़े ज़ोरसे हंसता था और इसी कारण मुझे उसके मनकी स्वस्थतामें सन्देह होने लगा। तब भी हमने उस दालानमें इधर उधर घूमकर पता लगाने और कुछ सुननेको प्रयत्न किया। इसी आशामें हम आगे बढ़ते चले गये कि कुछ न कुछ पता अवश्य लगेगा। समय समयपर मैं दियासलाई जलाकर देख लिया करता था। सदा बन्द रहनेके कारण उस दालानमें विचित्र तरहकी दुर्गन्ध थी जिसमें सांस लेना भी बड़ा कठिन था। वहाँ चूहोंकी भी कमी न थी, वे इधर उधर भाग रहे थे। इधर उस न्यूयार्कवासीका दिमाग़ इतना गर्म होगया था कि वह चिल्लाने लगा, मैं बार बार उसे रोकता था वह मेरी एक

न सुनता था। कई बार छतपर चलने फिरनेकी आवाज़ आती थी और हम नाटक गृहकी सभाके भ्रमसे काररवाई सुननेके लिये कान लगाते थे। परन्तु पीछे पता लगा कि वह बीचकी गली है और सभास्थल अभी दूर है। कुछ देरतक हम आगे चले गये परन्तु मेरे साथीको आगे बढ़नेमें बड़ी कठिनाई-होने लगी। वह स्थान स्थानपर ठोकर खाने लगा। शराबकी गर्म्मीसे साथही उस दालानकी दुर्गन्ध वायुने उसके सिरको ऐसा चक्कर दिया कि वह अपने आपेमें न रहा, उसको अपने भले बुरेकी कुछ भी सुध-बुध न रही। कभी हंसता और कभी गाली देता। हठ करके उसने स्वयं अपने हाथमें दियासलाईकी डिबिया लेली। वह जलती हुई दियासलाईकोही फेंक देता था। इसलिये मुझे डर था कि कहीं घरमें आंच न लग जाय। मैं देख रहा था कि यदि आग लग गयी तो और लोग बच भी सकते थे पर हमारे बचनेकी कोई आशा न थी। अब मुझे सभाकी काररवाई सुनने की अपेक्षा उस दरवाजेके ढूँढ़नेकी अधिक चिन्ता हुई, जिससे हम भीतर घुसे थे। अन्तको हम दालानकी हदपर पहुँचे। वहाँ पहुँचने पर हम आगे बढ़नेके लिये मार्ग ढूँढ़ने लगे। आगे बढ़नेका मार्ग हमें न मिला। परन्तु इसी खोजमें मेरे साथीका पांव गढ़ेमें पड़ गया। जिससे वह गिर गया। उस गढ़ेमें चूना भिगोया हुआ था। मेरे साथीके बूट और पतलून चूनेमें लथपत होगये। अब तो उसके क्रोधकी सीमा न रही। वह जोर जोर से चिल्लाने और गालियाँ देने लगा। बड़ी कठिनाईसे वह बाहर

निकला और दीवालके सहारे पीठ टेककर बैठ गया। उसने रातभर वहीं सोने और प्रातःकाल काम करनेके लिये मजदूर लोगों के आनेपर बाहर निकलनेका बिचार किया। उसने कहा कि यहाँसे निकलतेही मैं इस जँगली स्थानसे भागकर सभ्यताके केन्द्र न्यूयार्कको चला जाऊँगा। यह विचार कर जहाँ वह बैठा था वहीं लेट गया। मैंने बारबार उठानेका प्रयत्न किया परन्तु वह अचल मूर्त्ति के समान डट गया। बहुत चेष्टा करनेपर भी वह बिलकुल चेता नहीं और चुपचाप वहीं लेट गया। ऐसी अवस्थामें उसे छोड़कर मेरे लिये भी जाना असम्भव होगया।

अब मैं सोचने लगा कि क्या करना चाहिये ? मैं इसी चिन्ता में था कि मेरी आँखोंमें उजालेकी एक झलक सी पड़ी। इसे देखकर मैं घबड़ा गया और अपने साथीको बुलाया। वह भी खड़ा होगया और दरवाजेकी ओर टिकटकी लगाकर देखने लगा।

मेरे साथीने मुझसे पूछा :—"तुम क्या देख रहे हो"—मैंने उत्तर दियाः—"मुझे मामूली सा उजाला दिखायी पड़ रहा है।"

हम दोनों कुछ देरतक अपना सांस रोके खड़े रहे। थोड़ी देरमें दूसरी ओर दीवालपर लालटैनकी रोशनी चमकी। "अरे यह तो पहरेवाला है, उसने हमारा शोर सुन लिया ?—अब तो हमारे रहे सहे छक्के और भी छूट गये। मुझे क्रोध आगया और अपने साथीसे कहा कि यह सब तुम्हारीही कृपा है तुमने ही गुल गपाड़ा मचाकर उसको बुलाया है।" मैंने अपने साथीको

अपने पास बुला लिया और कहा सीधे खड़े रहो। जब मैं तुम से कहूँ तब अपने हाथ ऊपर उठा लेना और जबतक मैं न रोकूँ तबतक उठाये रखना।" थोड़ी देरमें फिर उजाला दिखलायी दिया। मैंने बड़ी भारी भूल की कि उसी समय पुलिसवालोंको आवाज़ क्यों न दे दी? परन्तु यह बात मुझे उस समय न सूझी थी।

धीरे धीरे उजाला फिर आगे दिखलायी पड़ने लगा और सारे दालानमें होगया। उस उजालेमें मैंने देखा कि दो आदमी बड़ी सावधानीसे हमारी ओर आरहे हैं। उनमेंसे एकके हाथमें लालटैन थी और दूसरेके हाथमें दो रिवाल्वर थे। मैंने अपने साथी से ऊपर हाथ उठानेको कहा उसने उसीके अनुसार किया। मेरा हृदय धड़कने लगा। परन्तु हमही सिर्फ न डरे थे, पुलिसमैन भी हमको देखकर डर गये। लालटैनवाला एक स्तम्भके पीछे छिप गया और दूसरेने हमको लक्ष्य करके गोली चलायी। गोली चलाकर वह भी छिप गया। गोली चलनेसे सारा नाटक गृह गूंज उठा। गूंजके शान्त होतेही मैं चिल्लाया। मैंने कहा :— "भाइयो! कृपया परमेश्वरके नामपर गोली मत चलाओ। हम चोर नहीं है। हम संवाददाता हैं। देखो, हमारे हाथ ऊपर उठे हुए हैं।" यह कहकर थोड़ी देरतक हम उसी अंधेरेमें खड़े रहे। इतनेमें दोनों पुलिसमैन इकट्ठे होगये। फिर लालटैनका प्रकाश चमका और रिवाल्वरका मुँह हमारी ओर हुआ, मैं डर रहा था कि अबकी बार गोली चलनेसे बार

खाली न जायगा। परन्तु मेरा डर व्यर्थ निकला, क्योंकि हमारे शब्द उन्होंने सुन लिये थे। उजालेमें अच्छी तरह देख भालकर एक पुलिसवाला बोला :—"हाथ ऊपर उठाये खड़े रहो, नहीं तो भला न होगा और मुझसे आगे आनेके लिये कहा। मैं हाथ ऊपर उठाये आगे बढ़ा और न्यूयार्क निवासी मूर्त्ति की भाँति वही खड़ा रहा। आगे जो कुछ बीती वह थोड़े शब्दोंमें ही सुन लीजिये कि पुलिसके आदमी हम दोनोंको हथकड़ी लगाकर थानेमें लेगये और वहाँ बहुत बादविवादके पीछे हमें छोड़ा गया।"

पाठक उपर्युक्त घटनाको किसी उपन्यास लेखककी कपोल कल्पना न समझें। अमेरिकामें रिपोर्टरोंकी इस प्रकारकी करतूतें नित्यही हुआ करती हैं। गुप्त सभाओंका पता लगा लेना, अथवा किसी खूनका भेद खोलना रिपोर्टरोंके बायें हाथका खेल होता है। एकबार शिकागोकी अदालतमें कतलका एक मुक़द्दमा था। मुक़द्दमा विचार करनेके लिये जूरी बैठी। जूरियोंने यह सलाह की कि जबतक परस्पर कोई मत स्थिर न हो जाय तबतक उसका भेद किसीपर प्रकट न किया जाय। सर्व साधारणको भी मह बात मालूम होगई कि मुकद्दमेके फैसले सुनानेके समयतक जूरियोंका मत प्रकट न होगा। भला अखबारोंके रिपोर्टरोंको कब चैन पड़ता, वे लोग सोचने लगे कि जूरी न्यायाधीशके विचारसे पहलेही प्रकाशित कर दिया जाय तो अच्छा हो। एक समाचारपत्रके तीन संवाददाताओंने बहुत सोचविचार कराअन्तमें एक युक्ति निकालही ली। वे एक रस्सा और झूला

लेकर अदालतमें पहुँचे, जब जूरी लोग सलाह करनेके लिये कम
रेके किवाड़ बन्द किये गये तब वे लोग पहरेदारोंकी नज़र बचाकर
उस कमरेकी छत्तपर चढ़ गये। कमरेके पीछे अर्थात् अदालतकी
इमारतकी बाहरी तरफ हवा आने जानेके लिये एक खिड़की थी।
तीनों संवाददाता इसी ओर पहुँचे। उनमेंसे दो आदमियोंने
रस्सा पकड़ लिया, एक उसे साधकर कुछ दूर नीचे उतर गया।
और खिड़कीके पास बैठकर रस्सेमें बँधे हुए झूलेपर बैठ गया।
वहाँ उसे इस कमरेके बन्द जूरियोंकी बातचीत अच्छी तरहसे सुनाई
पड़ती थी। वहाँ उक्त संवाददाता पूरे पांच घंटे लटका रहा
और जूरियोंकी कारवाईके नोट लेता रहा। दूसरे दिन जिस
अखबारका वह रिपोर्टर था, उसमें पूरी रिपोर्ट छपी पर लोगोंको
विश्वास नहीं हुआ, क्योंकि अमेरिकाके रिपोर्टर गप्प उड़ानेमें भी
कम नहीं होते हैं। अदालतके कर्मचारियोंने जब वह रिपोर्ट
देखी तब उनके भी आश्चर्य्यकी सीमा न रही। अखबारोंके
भूतोंसे बचनेके लिये उन्होंने दूसरे दिन अदालतमें दूना पहरा
बिठलाया। पर दूसरे रोज भी रिपोर्टरोंने बड़ी चालाकी चली
और पहरेवालोंकी आंखोंमें धूल झोंकही दी। वे लोग अदालत
के एक कोनेमें छिपे रहे। जब चारों ओर ताले लग गये, तब
एक दूसरी खिड़कीसे जूरियोंकी कारवाई सुनने लगे। तीसरे
और चौथे दिन भी उन्होंने ऐसाही किया। १७ घंटेमें जब जूरि
योंकी सलाह पक्की हुई तब संवाददाता वहाँसे टले और जूरियों-
में परस्पर जो विचार हुआ, वह अपने समाचारपत्रमें प्रकाशित

कर दिया। इससे बड़ी हलचल मची। इससे उस समाचार-पत्रकी खूब बिक्री हुई। जिधर देखो, उधर उस समाचारपत्रकी ही धूम थी। भला जहाँ इस तरहसे अखबारोंमें समाचार प्रकाशित हों, उस अखबारकी ग्राहक संख्या क्यों न बढ़ेगी? जानते हो कि इन संवाददाताओंको वेतन क्या मिलता था? जूरीकेमत के प्रकाशित करनेसे पहले प्रत्येक संवाददाताको ५४) रुपये प्रति सप्ताह मिलते थे, इस समाचारके प्रकाशित होनेसे उनकी दुगनी तनख्वाह होगई। कहनेका मतलब यह है कि वहाँ संवाददाता समाचारोंकी खोजके लिये अपनी जानतक ख़तरेमें डाल देते हैं। न तो यहाँ संवाददाताही इस भाँति प्रत्येक समाचारके ढूँढ़नेकी चेष्टा करते हैं न पत्र सञ्चालकोंका इस ओर ध्यान है। यहाँके संवाददाताओंको बहुत हुआ तो बिना मूल्य अखबार दे दिया और संवाददाताने भी इधर उधरके समाचार भेजकर अपने कर्त्तव्यकी इति श्री समझ ली, यही बहुत है। पर यूरोप, अमेरिकादि स्थानोंमें मुफ्ती संवाददाता नहीं होते हैं। इङ्गलेण्डके प्रसिद्ध राजनीति विशारद मि० चर्चहिल, जो पहले कैबिनट मिनिस्टर और जल शक्तिके मुख्य अफसर थे, दक्षिण अफ्रिकामें बोअर युद्धके समय "मारनिङ्ग पोस्ट"के सैनिक संवाददाता बनकर गये थे। वहाँ वे बोअरोंके फंदेमें फँस गये थे और लेडी स्मिथके किलमें क़ैद कर दिये गये थे पर पीछे किसी तरहसे भाग आये। इस तरहसे प्राणोंकी बाजी लगाकर सच्चे समाचार संग्रह किये जाते हैं। बोअर युद्धकी समाप्तिके पीछे, जब अङ्गरेज और

बोअरोंमें सन्धि की बातचीत होरही थी तब यह तय हुआ कि जबतक सन्धि दोनों ओरसे स्वीकृत न होजाय तबतक सन्धिकी कोई बात प्रकाशित न की जाय। उस समय दक्षिण अफरीकामें संसार के बड़े बड़े समाचारपत्रोंके संवाददाता पहुंचे हुए थे पर सन्धि परिषद्‌में जानेकी किसी संवाददाताको आज्ञा नहीं मिली। जिस मकानमें सन्धि परिषद्‌की बैठक होती थी उसपर बड़ा कड़ा पहरा था वहाँ कोई घुसने नहीं पाता था। वहाँसे तार या पत्र भेजे जाते थे, वह जाँच लिये जाते थे। जिस प्रकार पिछले यूरोपियन युद्धमें चिट्ठी पत्रो, तार आदिकी जांच सेन्सर करता था, ठीक वैसेही उस समय दक्षिण अफरीकामें सेन्सर बैठा हुआ था। फिर भी मज़ा यह था कि सन्धि परिषदमें जो बातें होतीं थीं, वह दूसरे दिन लण्डनके "डेलीमेल" में प्रकाशित होजाती थीं। सन्धिपरिषद्‌के कर्त्ता धर्त्ता विधाता बड़े हैरान थे कि इतना कड़ा प्रबन्ध करनेपर भी, ये सब बातें कैसे प्रकाशित होजाती हैं। सर्व साधारणमें उस समय "डेलीमेल" के सम्बन्धमें विचित्र अफवाहें उड़ रही थी अनेक लोग कहते थे कि डेलीमेल सन्धि सम्बन्धी गप्प उड़ा रहा है। खैर थोड़े दिन पीछे दोनों ओरसे सन्धि स्वीकृत हुई। और सन्धिकी स्वीकृत सब शर्त्तें सर्व साधारणमें प्रकट की गयी। तब सबको पता लगा कि वास्तवमें "डेलीमेल" की बातें सब ठीक हैं। स्वीकृत सन्धि और "डेलीमेल" में प्रकाशित सन्धिमें कुछ भेद नहीं है। "डेलीमेल" को सन्धि सम्बन्धी बातोंका पता कैसे लगा—इसका पूरा रहस्य आजतक किसीको

ज्ञात नहीं हुआ है—पर सन्धि स्वीकृत होजानेके पीछे "डेलीमेल" ने सन्धिके समाचार प्राप्तिका जो वृत्तान्त लिखा, वह बड़ा विचित्र है। सन्धिके समय जो परिस्थिति थी, उसका ज्ञान "डेलीमेल" को बहुत पहलेसे था। सन्धिकी बातें प्रकाशित होनेपर ब्रिटिश सरकार और साम्राज्यको लाभके बदले कुछ हानिकी सम्भावना न थी। "डेलीमेल" महिनों पहलेसे इसका प्रबन्ध करने लगा। एक प्राइवेट कोड़—साङ्केतिक शब्द समूह बनाया गया, जिसकी एक प्रति—"डेलीमेल"के कार्य्यालयमें रखी और एक युद्ध संवाद-दाताके पास। साङ्केतिक शब्द समूहके शब्द व्यापारिक भाषा के थे, जो उनका भीतरी मतलब नहीं जानता था, उसके लिये वे बाज़ार भाव और आर्थिक बातोंके द्योतक थे। इन्हीं शब्दोंमें युद्ध संवाददाता जोहन्सबर्गसे तारपर तार लण्डनके एक व्यापारीके नाम भेजता था। जो कोई डेलीमेलके संवाददाताके तार देखता था, वह समझता कि यह सोने और चांदीकी दर हैं। इससे "डेलीमेल"के तारोंमें कुछ रुकावट नहीं हुई लण्डनके जिस व्यापारी आफिसमें तार पहुंचते थे, वहाँसे "डेलीमेल"—आफिस में पहुंचा दिये जाते थे। वहाँ कोड़की कुञ्जीसे उनका वास्तविक अर्थ लगाया जाता था। यहां यह प्रश्न स्वभावतःही उठता है कि युद्ध संवाददाताको सन्धि विषयक समाचार कैसे मिलते थे। उस चतुर संवाददाताने सन्धि विधायकोंके केम्पमें अपना एक गुप्तचर रख छोड़ा था—शायद किसी भृत्यके रूपमें। गुप्तचर और संवाददातामें भेट या पत्र—व्यवहार होना असम्भव

था। दोनोंने कुछ इङ्गित या इशारे ठीक कर लिये थे। जब सन्धि परिषद्के स्थानसे ट्रेन द्वारा लोग लौटते थे तब वह गुप्तचर उसके भीतरसे एक खास जगहपर हाथसे इशारा कर देता और युद्ध संवाददाताको पूरी रिपोर्ट मिल जाती थी।"

"डेलीमेल"—सम्बन्धी ऐसी बहुत सी बातें हैं जो स्थानके अभावके कारण यहां नहीं लिखी गयी हैं। लण्डनसे पेरिसतक "डेलीमेल" ने समाचार प्राप्तिके लिये अपना तार लगा रखा है। जब कभी तार बिगड़ जाता है या कहीं टूट जाता है और तब लण्डनसे कुछ समाचार भेजना होता है तो वह "एरोप्लेन" से भेजा जाता है। "जो कुछ हो, समाचार न रुकने पावे"—यही "डेलीमेल"का सिद्धान्त है। एकबार लण्डन और पेरिसके बीच समाचार आने जानेका कोई साधन न रहा, एरोप्लेन नहीं था और जहाज खुल चुके थे, पर कोई खबर भेजनी जरूरी थी। जिसे तार द्वारा न्यू यार्क भेजा, वहाँसे वह खबर पेरिस भेजी गयी। इस घटनासे पाठक अनुमान कर लें कि "डेलीमेल"—समाचार पत्रके नाम और कामको सार्थक करनेके लिये कितना प्रयत्न करता है?

हमारे यहाँके लोग जितने पुलिसके जासूसोंसे घबड़ाते हैं, उससे कहीं बढ़कर, इङ्गलेण्ड आदि देशोंमें बड़े बड़े आदमी अखबारोंके संवाददाता और रिपोर्टरोंसे घबड़ाते हैं। एकबार लण्डनमें "डेली क्रोनिकल"ने उत्तरी ध्रुव तक न पहुंचने वाले डाक्टर कुककी पोल खोली थी। टर्कीके सुलतानको गद्दी

से उतारनेके समय "डेली क्रानिकल" का संवाददाता वहीं था। सुलतान अब्दुल हामिद किसी संवाददातासे नहीं मिलते थे—न उसे अपने महलोंमें आने देते थे। पर "डेली क्रानिकल"के सुयोग्य संवाददाता मिस्टर डोनोहोने सुलतानसे बड़ी चतुराईसे भेंट की और वहाँका सब हाल लिख भेजा। इस समाचारसे "डेली क्रानिकल" मालामाल होगया। और उसकी ग्राहक संख्या पहलेसे दूनी होगयी। "जहाँ न पहुंचे रवि, वहाँ पहुंचे कवि—" यह कहावत अमेरिका और विलायतके संवाददाताओंके विषयमें अच्छी फबती है। अभी यूरोपियन महासंग्रामके समय, संवाद दाताओंने बहुत सी बातें प्रकाशित कीं। आयर्लैण्डमें इस समय जो अशान्ति फैल रही है उसके सच्चे समाचार संग्रह करनेके लिये अपने प्राणोंका मोह न करके अनेक संवाददाता आयर्लैण्डमें पहुंचे हुए हैं। जिनके विषयमें यहाँ विशेष लिखनेकी आवश्यकता नहीं है। पाठक समाचारपत्रोंमें पढ़ही चुके होंगे।

हमारे देशमें जिस प्रकार सार्वजनिक कार्य्य करनेवालोंकी झूठी रिपोर्ट पुलिसके अनेक जासूस कर देते हैं, ठीक वैसेही इङ्गलैण्ड, अमेरिकादि देशोंमें संवाददाता भी कभी कभी बड़ी बेढब गप्पें उड़ा देते हैं। इन संवाददाताओंकी गप्पोंके नमूने श्रीयुक्तसन्त निहालसिंहने अपने एक लेखमें दिखलाये थे। सन्तनिहालसिंहने लिखा था:—"पश्चिम अमेरिकाके एक नगरमें एशियावालोंको निकालनेके लिये लोग व्याकुल थे। अखबारोंमें इसकी धूम

मची हुई थी। उस समय एक एशिया निवासी सज्जन वहां पधारे और एक बड़े शानदार होटलमें ठहरे। एक अखबारका संवाददाता आपसे मिलने गया। और प्रश्नपर प्रश्न करने लगा। पर आपने कुछ उत्तर न दिया। सिर्फ यह कहा :—"मैं अपने देशका राजकर्मचारी हूं, इसलिये किसी प्रश्नका उत्तर नहीं दे सकता।" संवाददाता धन्यवाद देकर चला गया। उसी दिन सन्ध्याको उस पत्रमें एक एशियाई सज्जनसे मुलाकातका वृत्तान्त छपा। उसमें लिखा था :—वह "एशियाई भर्त्ती करने वाला" एजेण्ट है, एशियासे आदमियोंको लाता है। कुशल हुई कि वह आदमी चुपचाप वहाँसे चल दिया नहीं तो उसकी बड़ी दुर्दशा होती।" कहिये चण्डूलखानेकी गप्पसे कुछ कम यह गप्प है कि नहीं।

और सुनिये—एक संवाददाताने हिन्दुस्तानके मर्दों और स्त्रियोंकी तसवीरोंके कार्ड सन्त निहालसिंहसे मांगें। उनके दिखाये हुए चार पांच कार्डोंमेंसे पारसी साड़ी पहने हुए तसवीर उसको पसन्द आयी। संवाददाताने वह कार्ड सन्त निहालसिंहसे एक घंटेके लिये मांगा।" उन्होंने संवाददातासे पूछा:—"इस कार्डको क्या करोगे तो उसने उत्तर दिया :—"दफ्तरके लड़कोंसे बाजी लगी है। वे कहते हैं कि पारसी स्त्रियाँ कमीज़ और पतलून पहनती हैं और मैं कहता हूँ कि ऐसा नहीं है। उनको दिखलानेके लियेही इस कार्डकी जरूरत है।" अतएव सन्त निहालसिंहने वह कार्ड उस संवाददाताको दे दिया।

पौन घंटेसे भी कम समयमें वह संवाददाता उस पोस्ट कार्डको लेकर लौट आया और वह कार्ड सन्तनिहालसिंहको लौटा दिया। उसके चेहरेपर प्रसन्नता झलक रही थी, जिससे प्रतीत होता था कि वह बाजी जीत गया है। उसने पन्द्रह रुपयेका एक बिल दिखलाया और कहा कि मैंने यही जीता है। इतना कहकर और धन्यवाद देकर वह चला गया। सन्त निहालसिंह कहते हैं कि मैं इस घटनाको भूल गया था, पर कुछही घंटोंमें मेरे मित्रने एक अखबारके एक लेखकी ओर मेरा ध्यान आकर्षण किया। उसमें लिखा था :—"इस शहरमें पारसी जातिकी एक बाग़ी औरत आयी है इसके अतिरिक्त जो तसवीर मैंने उस संवाददाताको दी थी; उसकी नक़ल खूब लम्बी चौड़ी उसमें छपी थी। उस तसवीरके नीचे लिखा हुआ था कि हिन्दुस्तानसे आयी हुई बाग़ी औरतका यह अन्तिम फोटोग्राफ है।" देखा पाठक! अमेरिकाके संवाददाताओंकी गप्पोंके नमूने, हमारे यहाँके कवियोंने अपनी कल्पना शक्तिसे किसी सुन्दरीके मुखकी चन्द्रसे उपमा देते हुए, चन्द्रको कलङ्कित और स्त्रीके मुखको निष्कलङ्कित ठहराया है पर अमेरिकाके संवाददाता अबलाको सबला अर्थात् "बाग़ी" बनानेमें भी नहीं हिचकते हैं। इङ्गलेण्डके अखबार भी गप्पोड़े बाजी हाँकनेमें कम नहीं होते हैं। लण्डन टाइम्सके संवाददाता सर शिरोलने लोकमान्य तिलकके सम्बन्धमें जो गप्प उड़ायी थी, उसके सम्बन्धमें तो यहाँ कहनेकी आवश्यकता नहीं है। इङ्गलेण्डके "ग्लोब"ने भी तिलक महोदयपर सन् १८९७वाले मुक़द्दमेके

समयपर आक्षेप किये थे, तिलक महोदयने इसपर नालिशकी और* "ग्लोब" ने उनसे मुआफी मांगी। इसी "ग्लोब" ने जर्मन युद्धके समय यह गप्प उड़ा दी थी कि इङ्गलेण्डके प्रधान मन्त्री मि० एसक्विथकी पत्नी जर्मन कैदियोंसे सहानुभूति रखती हैं। मुक़द्मा अदालतमें पेश हुआ तब "ग्लोब" ने क्षमा मांगकर छुटकारा पाया। शायद अपने विलायती भाइयोंकी देखा देखीही, हिन्दुस्तानके एङ्गलो इण्डियन पत्र बेचारे हिन्दुस्तानियोंके सम्बन्धमें गप्पें हाँक देते हैं। इस तरहकी गप्पोंसे अखबारका विश्वास घट जाता है। ऐसी व्यर्थकी गप्पोंसे प्रत्येक समाचारपत्रको बचना चाहिये। क्योंकि ऐसी हलकी बातोंको लिखनेसे समाचारपत्रोंकी प्रतिष्ठामें बट्टा लगाता है। कभी कभी मिथ्या गप्पोड़े बाजीके कारण बड़ी हानि उठानी पड़ती है।

रिपोर्ट और संवाददाता जो कुछ समाचार लिखते हैं अति शीघ्रतामें लिखते हैं। उनके लिखे हुए समाचारोंको सिटी एडीटर और कापी रीडर ठीक कर देते हैं। रिपोर्टरोंको चाहिये जो कुछ वे लिखे, उसका सारांश एक पैरेमें बनाकर अपने लेखके शीर्षकके नीचे दे दें। जिससे पाठकोंको पढ़नेमें विशेष सुभीता रहता है। सच पूछिये तो संसारमें अनुभव भी कोई चीज है। बिना अनुभव प्राप्त किये हुए कोई सम्पादक, कवि अथवा लेखक समाज

---

* इस पुस्तकके लेखकका लिखा हुआ, लोकमान्य तिलकका चरित्र "जोशी एण्ड को०—पोस्ट बक्स ६७०४—बड़ा बाजार कलकत्तासे एक रुपयेमें मंगाकर पढ़िये। उसमें इस मुकद्दमेका वृत्तान्त छपा है।

का चित्र चित्रण करनेमें समर्थ नहीं होसकता है। यों दूसरोंके सिरपर त्यौहार मना लेना दूसरी बात है। क्या कारण है कि आज हजारों वर्ष बीत जानेपर भी हिन्दू समाज अपने ऋषि मुनियोंके बतलाये हुए पथपर चल रहा है। आज भी अगणित हिन्दू प्राचीन ऋषि मुनियोंके ग्रन्थोंको अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति पूर्वक देखते हैं। इसका एकमात्र कारण यही प्रतीत होता है कि उन्होंने मनुष्य स्वभावके अनुकूल अनेक बातें अपने ग्रन्थोंमें लिखी थीं जिनमेंसे आज भी बहुत सी बातें प्रचलित हैं। यूरोपमें भी ऐसे अनेक लेखक होगये हैं, जिन्होंने अपने समाजकी वास्तविक परिस्थिति जाननेके लिये, समाजमें प्रचलित कुरीतियोंको दूर करनेके लिये जेलखाने तककी हवा खायी है। "रिव्यू आव रिव्यूज़" के जन्मदाता और स्वर्गीय सम्पादक, मिस्टर डबल्यू० टी० स्टीड़के नामसे प्रत्येक भारतवासी परिचित है अपने देशकी एक सामाजिक कुरीतिका असली रूप पहचाननेके लिये वे प्रसन्नतापूर्वक जेल गये थे। पेरिसके एम वालियर, जार्जेस डेनियल जीन ब्रेमान्टियर आदि लेखकोंने बड़ी बड़ी आपत्तियाँ झेली थीं। डेनियल एकबार लोबरेके अजायब घरमें रातभर एक पत्थरके ताबूतमें छिपा रहा और लिखा कि लोबरेके अजायब घरके रक्षक बड़े असावधान रहते हैं। एकबार एक दूसरा लेखक सोन नदीमें कूद पड़ा और लिखा कि "पुलिसके कुत्तोंसे मनुष्योंकी रक्षा नहीं होसकती है।" आजकल यूरोपके लेखकोंके लिये ऐसे काम करना बायें हाथका खेल होगया है। एक और लेखक एम

वालियर साहबका मनोरञ्जक वृत्तान्त सुनिये। एम वालियर साहब ऊँचे क़दके दुबले पतले आदमी थे, उनकी आँखें बड़ी बड़ी थीं। रङ्ग कुछ पीला था। इसलिये जब वे अपने बाल और डाढ़ी बिखर करे दर्पणमें अपना मुँह देखते तब उन्हें यह भली भाँति प्रतीत होजाता था कि लोग उनको देखकर, पागल समझ लेंगे। इस तरह एकदिन वे पागलका स्वांग बनाकर अपने घर से बाहर निकले। उनकी प्रबल इच्छा थी कि राहमें पुलिसका कोई आदमी मिल जाय तो अपने पागलपनका नमूना उसे दिखलावे। दैव उनके अनुकूल था कि अकस्मात् रास्तेमें उनको दो डिटेक्टिव मिले, वालियर साहब उनको अच्छी तरहसे पहचानते थे पर उक्त दोनों डिटैक्टिव वालियर साहबको नहीं पहचानते थे। बस फिर क्या था--"चुपड़ी और दो दो—"वालियर साहबकी खूब बन आयी। उनकी पांचों उङ्गुली घीमें थी।" डिटेक्टिवोंके पाससे निकलतेही वे खिलखिलाकर हँसने लगे। फिर कहने लगे कि पुलिस की नादानी तो देखो कि वह अपने बादशाह एडवर्डकी रक्षा नहीं कर सकती। बेचारा अपने सहाराके भाईके चक्करमें पड़ गया है।" उनकी ऐसी बेहूदी बातें सुनकर दोनों डिटेक्टिव कुछ दूर हटकर खड़े होगये। तब अपने पास और किसीको न देखकर वालियर साहब, एक लेम्प पोस्टसे कहने लगे :—"क्यों तुम्हारी क्या राय है? तुम तो यहाँ बैठे बैठे दुनियां भरके लोगोंसे बातें किया करते हो, किसीकी सुनते हो नहीं। मेरी बात तो सुनो। मैं कहता हूं तुम्हारा कहना बिलकुल ग़लत है। एकदम ग़लत, नहीं तो बहस

कर लो,हम तैयार हैं। लैम्प पोस्टने उत्तर नहीं दिया। इसपर आप ने कहा कि शैतान, खड़ा रह अभी तुझे मज़ा चखाता हूँ।" इतना कहकर अपनी आस्तीन चढ़ाकर उन्होंने मुक्का उठाया। यह देखकर दोनों डिटेक्टिव पास आगये। उक्त दोनों जासूसोंको देखकर बालियर साहब कहने लगे:—"साहबो! आप लोग अच्छे मौकेपर आये, जरा इधर आइये, मैं आपको एक मार्केकी बात सुनाता हूँ। पर यह लेम्प पोस्ट कहीं सुन न लें। इधर आइये फिर इस तरह धीमी आवाज़से कहने लगे:—"मेरा नाम "होपोपूलो" है, मेरोकोके बादशाहने मुझे राजदूत बनाकर भेजा है। मैं एक खास कामके लिये भेजा गया हूं।" जानते हो वह काम कैसा है? साहब बहादुरने अब अपनी आवाज बिलकुल धीमी कर ली और बड़ी गम्भीरतासे कहा:—"बादशाह एडवर्ड एक बड़ी विपत्तिमें फँस गये हैं। समझे साहब! मैं ऐसा वैसा आदमी नहीं हूं।" डिटेक्टिवोंको विश्वास होगया कि यह पागल है। उन लोगोंने बालियर साहबको खुश करनेके लिये बड़ी नम्रता से सिर झुकाया। फिर उनमेंसे एकने कहा:—"आपका कहना सच है। यहां इङ्गलेण्डके बादशाहके एक गुप्त दूत आये हुए हैं। चलिये, मैं उनसे आपको मिला दूँ। तब फिर आप उनसे यह रहस्य खोल दीजियेगा। होपोपूलो (पाठक ऊपर पढ़ चुके हैं कि बालियर साहबने अपना यह नाम बनावटी रख लिया था) फिर जोरसे खिलखिलाकर हंसने लगा और कहा :—"यह तो आपने खूब मज़ेकी बात कही।" दोनों डिटेक्टिवोंने बड़ी सफाई

से इस बातकी जाँच कर ली कि इसके पास कोई पिस्तौल वगैरह तो नहीं है। फिर बड़े प्रेमसे बातचीत करते हुए वे तीनों वहाँसे चल दिये।

थोड़ी देरमें तीनों पुलिस स्टेशनमें पहुंच गये। वहाँके अफसरको भी यह निश्चय होगया कि बालियर पागल है। यहां भी बालियरने पागलपनका स्वांग करनेमें कमाल कर दिया। उक्त अफसरसे भेंट होतेही साहब बहादुर बड़े तपाकसे बोले :—"मेरा नाम सिगनर हेरवान होपोपूलो है, यह मेरा कार्ड है।" यह कहकर बालियरने अपनी जेबसे एक लम्बा चौड़ा तख्ता निकाला उसपर काली स्याहीसे टेढ़ी मेढ़ी लकीरोंसे कुछ लिखा हुआ था। अफसरने उन्हें बैठनेके लिये एक कुर्सी दी। तब हज़रत बड़ी शानसे उसपर बैठ गये।

थोड़ी देर पीछे उनके पागलपनकी जांच करनेके लिये दो डाक्टर बुलाये गये। दोनों डाक्टरोंने बहुत देरतक बालियर साहबकी परीक्षा की। अन्तमें उन्होंने यह निश्चय किया कि इसका मस्तिष्क तो बिगड़ा नहीं है, पर उसमें कुछ खराबी आ गयी है। साधारण चिकित्सासे यह अच्छा होजायगा।" पर बालियर साहब तो यह नहीं चाहते थे। उन्हें तो पागलखाने जानेकी सूझी थी। बस उन्होंने ऐसा ढोंग दिखलाया कि डाक्टरोंको विश्वास होगया कि रोग साधारण नहीं है। सर्व साधारणको धोखा देनेके लिये स्वांग कर लेना सरल है पर डाक्टरोंको धोखा देना टेढ़ी खीर है। कुछ भी हो बालियर साहबके चकमे

में दोनों डाक्टर आगये और उन्होंने वालियरको पागल निश्चय करके, उनके दोनों हाथ बंधवाकर एक कोठरीमें बन्द करवा दिया। जब वालियर साहब कोठरीमें पहुँचाये गये तब उन्हें मालूम हुआ कि पागल बनकर रहना सुखकर नहीं है। कुछ देरके बाद उन्हें भूख लगी। पर डाक्टरोंकी आज्ञासे आपको भोजनकी मात्रा इतनी कम मिली कि उससे पेट भरना तो दूर रहा। उलटा जठरानल और बढ़ गया। बस किसी तरह आपने रात काटी। गनीमत यही थी कि आपको नींद आगयी। सुबह आपके हाथ खोल दिये गये और आप डाक्टरके पास पहुं-चाये गये। डाक्टरने कहा :—"आप पागलखानेमें सबसे अलग रखे जायँगे, क्योंकि आपका रोग असाधारण हैं। दिनमें पाँच छः बार आपको बर्फके पानीमें स्नान करना पड़ेगा। वालियर साहबने देखा कि अब बात बढ गयी है, तब आपने कहा :—"मैं एक सामयिक पत्रका संवाददाता हूं। मैं पागल नहीं हूं।" डाक्टरने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा :—"कौन कहता है कि आप पागल हैं। आप जरा ठण्डे पानीमें नहा लीजिये। फिर इङ्गलेण्डके बादशाहसे भेंट कीजिये।"

वालियर साहबने लाख कोशिशकी .पर किसीने उनकी बात न सुनी। बेचारे वालियरको बर्फमें डूबना पड़ा। चिकित्सा हो जानेपर वे फिर अपने कमरेमें पहुँचाये गये। अकेले बैठकर वे सोचने लगे कि अब क्या करना चाहिये? क्योंकि वहाँ उनकी बातोंपर कोई विश्वास नहीं करता था।

विलायतमें संवाददाताओंके पास एक कार्ड रहता है। उसमें पत्र-सञ्चालक और पुलिसके अफसरके दस्तख़त रहते हैं और संवाददाताका चित्र भी उसमें चिपका दिया जाता है। मौका पड़नेपर उसीको दिखलाकर संवाददाता मौके, बे मौके बच जाते हैं। वालियर साहबको भी एकाएक खियाल हुआ कि उनके कोटमें कार्ड मौजूद है। जब नौकर उनको भोजन देने आया तब उन्होंने उसे अपना कोट जांचनेके लिये बहुत अनुरोध किया। बड़ी मुश्किलसे वह राजी हुआ। डाक्टरोंके आनेपर बालियरके सामने, उनके कोटकी जांच की गयी। तब कोटकी जेबसे वह कार्ड निकला। वह कार्डको देखकर डाक्टरोंको सन्तोष न हुआ। पर वालियर साहब मुस्कुराने लगे। और फिर डाक्टरोंसे कहा :—"साहबो! आप इस बातका कुछ ख्याल न करें मैं आप लोगोंको अपना दोस्तही समझूँगा। और यहांसे छूटते ही आपको दावत दूंगा।" डाक्टरोंने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया और दोनों एक दूसरेकी ओर देखने लगे। फिर बड़े डाक्टरने बड़े गम्भीर स्वरसे कहा :—"साहब यह तो बहुत बुरा हुआ। यह चोरीका मामला है। आपका नाम होपोपूलो है और यह कार्ड वालियर साहबका है। अब तो मामला सङ्गीन होगया। इतना कहकर डाक्टरने घंटी बजायी। नौकरके आनेपर चार पाँच गगरे पानी लानेके लिये कहा और फिर बालियर साहबकी ओर देखकर कहा :—"आपका रोग बढ़ गया है। इसके लिये सबसे अच्छा उपाय......"

वालियर साहबने चिल्लाकर कहा :—"मुआफ कीजिये। मुझे आपकी चिकित्साकी ज़रूरत नहीं।" पर डाकृरने उनकी एक न सुनी। बेचारे वालियरके सिरपर घड़ा भर ठण्डा पानी डाला गया। इसके बाद सब लोगोंने मिलकर वालियरकी चिकित्सा आरम्भ की। कोई सिरपर पानी उड़ेलने लगा। कोई भीजे तौलियासे उनके शरीरको रगड़ने लगा। कोई पोंछने लगा। बेचारे वालियर साहब बहुत घबड़ाये। वे सचमुच घड़ी भरके लिये पागल होगये। वे भागनेकी कोशिश करने लगे। सामनेका दरवाजा खुला हुआ था और वहीं वालियर साहबका कोट और हैट भी रखे हुए थे। वे तुरन्तही उठकर भागे। बड़ी मुश्किलसे बाहर आये। तब जरा उनके जीमें जी आया। फिर एक गाड़ी किराया करके वे अपने पत्र आफिसमें गये। और वहाँ कुर्सीपर बैठकर उन्होंने अपनी विपत्तिकी कहानी लिख डाली। कहानी छप जाने वालियर अपने पत्रकी एक प्रति ले कर डाकृरोंके पास गये। डाक्टरोंने कहा:—"साहब हम तो आपको पहलेही ताड़ गये थे।" वालियरने हंसकर कहा :— "अब आप ऐसा क्यों नहीं कहेंगे।" फिर तीनों बैठकर वहीं कहानी पढ़ने लगे।*

---

* "सरस्वती" से वालियरकी कहानी परिवर्त्तित रूपमें उद्धृत।

इन्टरव्यू अर्थात् साक्षात्कार ।



"सीख्यो धन धाम सब कामके सुधारिबे को
सीख्यो अभिराम बाम राखत हजूर में
सीख्यो सराजाम गढ कोटके गिराइबे को
सीख्यो समसेर बांधि काटि अरि ऊर मैं
सीख्यो कुल जन्त्र मन्त्र तंत्रहूंकी बात
सीख्यो पिंगल पुरान सीख बह्यौ जात कूर मैं
कहै कृपाराम सब सीख्यो गयो निकाम
एक बोलबो न सीख्यो सीख्यो गयो धूर मैं"

× × × ×

"असर लुभानेका प्यारे तेरे बयानमें है ।
किसीकी आंखमें जादू तेरी ज़बानमें है ॥"

ऊपर लिखा जा चुका है कि रिपोर्टर और संवाददाता कई प्रकारके होते हैं। और किस प्रकारसे वे समाचारोंका संग्रह करते हैं पर इन संवाददाताओंके काममें साक्षात्कार (Interview) का काम कठिन होता है। "इन्टरव्यू" की प्रणाली सन् १८५६ ई० में "न्यूयार्क हेरल्ड" पत्रके सञ्चालकोंने निकाली थी। पर साक्षात्कार अर्थात् "इन्टरव्यू" का काम कुछ हंसी खेल नहीं है। यह कार्य बहुत कठिन होता है। जिस प्रकार रिपोर्टर अदालतके फैसले, समाचार आदिकी गुप्त काररवाईयोंका पता

लगा लेते हैं उसी प्रकार "इन्टरव्यू" के काममें वही मनुष्य सफलता प्राप्त कर सकता है जो बातचीतमें दूसरे मनुष्यके हृदय की थाह लगानेमें समर्थ हो। इस कामके लिये जो मनुष्य चुना जाय, उसकी योग्यता ऐसी होनी चाहिये कि वह प्रायः सब मुख्य विषयोंमें निपुण हो। इसके अतिरिक्त वह उद्यमी, साहसी, चतुर, नाट्य कलामें प्रवीण, मनोभावोंके बदलनेमें बहु रूपियेकी भाँति दक्ष, शस्त्रादि प्रयोगमें सिद्ध-हस्त, सब प्रकारके वाहन तथा यानरोहणमें कुशल, बोलनेमें पटु, नीतिमें निपुण तथा देशकी मुख्य समितियोंका सदस्य हो।

साक्षात्कारी अर्थात् इन्टरव्यू करनेवालोंमें बातचीतकी चतुराई विशेष रूपसे होनी चाहिये। कभी कभी ऐसे मनुष्योंसे काम पड़ता है, जो शीघ्रही क्रोधित होजाते हैं अथवा बातचीत करनेका बहुत थोड़ा समय देते हैं। ऐसे समयमें साक्षात्कारीको बड़ी कठिनाईसे सामना करना पड़ता है। उस समय जब "अड़ियल टट्टू" के समान आदमियोंसे काम पड़ जाय तब साक्षात्कारीको ऐसे ढङ्गसे बातचीत करनी चाहिये जिसमें बतलानेवालेका जी न ऊबे और वह अपने मनका सब भेद कह दे। साक्षात्कारीको स्मरण रखना चाहिये कि जिन आदमियोंसे वह साक्षात् करने जाता है, वे तीन प्रकारके होते हैं। एक प्रकारके ऐसे मनुष्य होते हैं, जो बहुत कम बातें करते हैं, दूसरे ऐसे मनुष्य होते हैं जो बिलकुल बातें नहीं करते हैं। तीसरे ऐसे होते हैं जो खूब बातें करते हैं। यदि ऐसे मनुष्यसे काम पड़ जाय जो बहुत बातें

करता हो तो उस समय साक्षात्कारीको उचित है कि वह एकाग्र होकर, ध्यान पूर्वक उसकी बातें सुनें, जो कुछ वह कहें, उसे अपने हृदयपटलपर अच्छी तरहसे अङ्कित कर ले, यदि कोई चुभता हुआ वाक्य उसकी बातोंमें हो तो उसे उसी समय लिख ले, यदि उसने अपनी किसी बातके प्रमाण स्वरूप कुछ आँकड़े बतलाये हों तो उसको भी तत्काल लिख ले, साथही इस बातका ध्यान रखे कि जिस विषयको लेकर, बातचीत होरही है, उस विषयसे भटक न जाय। यह भी स्मरण रखना चाहिये कि यदि प्रश्नोत्तर करते समय वह अपने विषयसे अलग होगया तो कार्य्यालयमें पहुंचकर वह विषय लिखना कठिन होजायगा। अच्छे अच्छे साक्षात्कारी भी इस विषयमें चक्कर खा जाते हैं। साक्षात्कारीको चाहिये कि किसीके पास पहुंचनेसे पहले जो कुछ प्रश्न पूछना हो, उसके सम्बन्धमें सिल सिलेवार अपने विचारोंको ठीक करले। बात चीत करते समय विशेष अवस्था आ पड़ने पर कैसे वाक्योंका उपयोग करना चाहिये, इसके लिये साक्षात्कारियोंको कुछ बंधे हुए वाक्य रट लेने पड़ते हैं और जब जैसा अवसर होता है उसके अनुसार कहे हुए वाक्योंका उपयोग करना पड़ता है। साधारण अवस्थामें जिन वाक्योंका उपयोग किया जाता है उनमेंसे कुछ इस प्रकार होते हैं।—

१—आप अपने विचारोंको किस आधार पर प्रकट कर रहे हैं?

२—आपसे इस विशेष विषयका क्या सम्बन्ध है?

३—आप ऐसे विचारों वाले तो बहुत हैं पर कार्य करनेवालों की गणनामें किन किनके नाम लिये जांय यह मुझे कहीं नहीं दिखायी देता।

४—क्या आपने किसी दूसरे संबाद खोजकको भी इस विषय पर अपने कोई विचार बतलाये हैं ?

५—जिन महाशयोंसे मेरा साक्षात्कार अभी तक हुआ है उन सबसे आप बहुत कुछ अंशमें भिन्न हैं।

६—बातचीत समाप्त होनेपर चलते समय आपके साक्षात्कार से मैं बहुत प्रसन्न हुआ। क्या फिर कभी भी आपको कष्ट दे सकूंगा ? (अत्यन्त नम्रतासे हाथ मिलाते हुए) जो कुछ कहा सुना हो क्षमा कीजियेगा। यह पेशा ही ऐसा है कि कभी कभी दिल दुखाने वाली बातें भी कहनी पड़ती हैं।

अमेरिका प्रवासी श्रीयुक्त सुकुमार चटर्जी आई० जे० अपने लेख "नामी व्यक्तियोंसे साक्षात्कार" शीर्षक ऊपर लिखे हुए वाक्यों का उल्लेख करके लिखते हैं कि ऊपर लिखे हुए प्रश्नों और वाक्यों पर क्रमशः विचार करनेसे मालूम होगा कि साक्षातकारीके किस प्रश्नसे कौनसा भाव निकाल लेता है। पहले प्रश्नसे मनुष्यके स्वभाव तथा बुद्धिका पता लगेगा कि वह अपने विचारोंके समर्थन में कौनसे प्रमाण देता है। दूसरेसे रूचि और दृढ़ता मालूम हो जावेगी। तीसरेसे क्रिया शीलताका पता लगेगा कि वे केवल "पर उपदेश कुशल" तो नहीं है। चौथे के कई अभिप्राय हो सकते हैं जैसे अभी तक कितनी प्रसिद्धि लाभ कर चुके हैं किस

किस पत्रके संवाद खोजक आपसे परामर्श लेचुकेहैं। साक्षात्कारी की चतुराई और चालाकी समझे या नहीं, बुद्धिकी थाह कितनी गहरी है, इस प्रश्नका उत्तर कैसे ढङ्गसे देते हैं, इत्यादि। पांचवेंसे बातचीत करनेमें जो कड़े शब्द कहे गये और अपमान किया गया है उसे मिटानेके लिये थोड़ी सी चापलूसी की जाती है। छठवेंका भाव स्पष्ट ही है।"

यों तो प्रायः सबही विषयों पर साक्षात्कार होते हैं पर साक्षात्कारोंमें सबसे कठिन कार्य उस साक्षात्कारी का है जो राजनैतिक अथवा आर्थिक सङ्कटों का कारण ढूंढ निकालता है। इस कार्यमें उसमें न तो कोई आधार ही मिलता है और न खुफिया पुलिसकी सहायताकी आशाही रहती है। इसमें प्राण जानेकी भी आशङ्का रहती है। पता लगाने के लिये जगह जगह मारे मारे फिरना वेश बदल कर विपक्षी दलमें मिल जाना आत्म-रक्षाके लिये अस्त्र शस्त्र का प्रयोग करना आदि सभी अवस्थाओं का सामना करना पड़ता है।

हम पीछे लिख आये हैं कि संवाददाताओंको सच्चे समाचारों के खोजने में किस प्रकारकी कठिनाईयाँ झेलनी पड़ती हैं। कहीं कहीं तो उन्हें अपने प्राणों तक की बाजी लगानी पड़ती है। इस विषयकी कई संवाददाताओंकी राम कहानी ऊपर लिखी जाचुकी है। श्रीयुत सुकुमार चटर्जी आई, जे [illegible] भी अपने सम्बन्ध की एक घटना का उल्लेख किया है, वह सुनने लायक है। वे लिखते हैं कि "युद्धकालमें जब शक्करकी मँहगी अधिक बढ़

चली थी, तब उसका मुझे कारण ढूँढ निकालनेके लिये जावा जाना पड़ा था। वहाँ शक्कर के कारखानोंके भीतर जानेकी आज्ञा बाहरके किसी मनुष्यको न थी। मैंने वहाँके मशीन चलाने वाले नौकरोंके साथ बातचीत करके यह जाननेकी इच्छा प्रकट की कि मशीनचलाने वालोंके क्या कार्य होते है? मशीन चलाने वाले नौकर मुझे भीतर ले गये और सब कुछ बताने लगे। मुझे उस बर्षके आय-व्यय के साथ गतबर्षके आय-व्ययकी तुलना करनी थी। उनकी प्रशंसा करते हुए मैंने शक्करके कार्यालयके खर्च आदिके विषयमें अपनी अनभिज्ञता प्रकट की। फिर मैंने सब-का मूल्य दैनिक कार्यका लेखा, श्रमजीवियोंका वेतन कच्चे सामानका मूल्य लाभ तथा हानि आदि सब बातोंका पता ले लिया एकान्तमें हिसाब लगा कर देखा तो मालूम हुआ कि मँहगी का कारण श्रमजीवियोंका अधिक वेतन माँगना या कच्चे मालकी मंहगी आदि कुछ भी नहीं है। फिर जहाज़की कम्पनियोंके पास जाकर महसूल की जाँच—पड़ताल की पर वहां भी कोई कारण न मिला। जब मैंने सोच विचार कर मैनेजरसे निश्चित किया। फिर अमेरिकाके राजदूतसे एक सिफारिशी पत्र लेकर मैं मैनेजरसे मिला और मैंने अपनेको भारतका शक्करका व्यव-सायी बताया। थोड़े ही समय बाद मुझे मालूम हुआ कि वह मुझ पर सन्देह करता है। मैंने तुरन्त जर्मनी की प्रशंसा कर दी। और युद्धका दोष रूसके सिर मढ़ा। इस प्रकार जब मैंने मैनेजर के मनका सन्देह दूर कर दिया तब शक्करका भाव करनेकी प्रार्थना

की। उसने अपनी वही रामकथा रटना शुरू कर दिया कि कच्चा माल मंहगा आता है, मजदूरी अधिक देनी पड़ती है इत्यादि। पर ये बातें मैं पहिले ही मालूम कर चुका था कि इनमेंसे कोई एक भी कारण महंगीका नहीं है। फिर मैंने उनसे कहा कि मैं नियम विरूद्ध व्यापार करना चाहता हूं और टर्कीको शक्कर भेजूँगा पहिले तो उसने आगा पीछा किया फिर मुझे कार्यालयके अध्यक्ष से मिला दिया। अध्यक्ष महाशयने यहाँ-वहाँकी सुनाते हुए साफ साफ बता दिया कि जावासे हालेण्डको शक्कर भेजी जाती है! यही मुझे पक्की तरहसे मालूम करना था। उनसे दूसरे दिवस मिलने का बहाना करके उसी दिन मैं अमेरिका रवाना* होगया और गुप्त रिपोर्ट में सारा हाल दे दिया।

अमेरिका आदि देशोंमें बाहरसे जब कोई नामी आदमी आता है तब उनसे भी साक्षात् (इन्टरव्यू) करते हैं। उससे उसके देश सम्बन्धी अथवा अन्य कोई विशेष विषयपर सम्मति संग्रह करते हैं। जब कोई व्यक्ति जहाज द्वारा यात्रा करता है तो उस का नाम एक सूचीमें लिख दिया जाता है। यह सूची जहाजमें एक निश्चित स्थानपर लगी रहती है। उसी सूचीमें प्रत्येक यात्रीका नाम धंधा आदि लिखा रहता है। जब प्रवासी जहाज़ से उतरते हैं, तब साक्षात्कारी उस सूचीका आधार लेकर प्रत्येक व्यक्तिसे बातचीत करता है और उसके हृदयकी थाह लेता है। साक्षात्कारी इतने चतुर होते हैं कि जैसा चाहे उत्तर उस

* आश्विन, शुक्ल प्रतिपदा संवत् १९७६ वि० की "श्रीशारदा" से।

मनुष्यसे कहला लेते हैं। इसका एक दृष्टान्त श्रीयुत सुकुमार चटर्जी महोदयने अपने लेखमें यह दिया है कि सन् १६१८ ई० में मार्च मासमें कुछ अमेरिकन लोग रूससे अमेरिकामें लौटे। उनमें-से एकने बोलशेविकोंकी खूब निन्दा की और उनके अत्याचारोंका वर्णन करते हुए बताया कि वे स्त्रियोंका आदर नहीं करते, धनियों को लूटकर अपना जीवन व्यतीत करते हैं इत्यादि। रूसी लोगों की "मेलटिंग पाट" नामक एक पत्रिका अमेरिकासे प्रकाशित होती थी। उसके प्रधान "स्टार रिपोर्टर" मिस्टर लरनीन थे। वे "डिवाइन ट्रिब्नल" नामक प्रसिद्ध समितिके सदस्य थे और डेनोनेटके सिवा दूसरे सब जर्नलिस्ट उनसे नीचे थे। उन्होंने रूसकी निन्दा अमेरिकाके "क्रानिकल" पत्रमें पढ़ी। उसे पढ़कर लरनीनने "उलटे मुँहकी खाई।" (Convicted out of his own mouth) शीर्षक देकर एक लम्बा लेख लिखा और उस लेखकी पूर्त्तिके लिये उस रूस द्वेषी अमेरिकनके पास जा पहुंचे। उनसे जो प्रश्नोत्तर हुए वे इस प्रकारके थे :—

लरनीन—मैं आपके पास बोल्शेविकोंके विषयमें कुछ संवाद लेने आया हूं। क्या आप कृपाकर यह बतलावेंगे कि आप उन के किस स्थानमें कितने दिनतक रहे?

अमेरिकन—बड़े हर्षके साथ। मैं तो संसारके सामने बोल-शेविकोंके अत्याचारोंको प्रकटकर देना अपना कर्त्तव्य समझता हूं।

लर०—यदि मैं आपके बताये हुए अत्याचारोंका वर्णन प्रकाशित कर दूँ और आपका नाम न दूँ तो कुछ अनुचित तो न होगा।

अमे०—अवश्य होगा क्योंकि—

लर०—बस बस मैं समझ गया। तो आप बोल्शेविकोंके अत्याचारोंकी घोषणाके साथ अपना नाम भी प्रकाशित करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं?

अमे०—हाँ, नहीं—ऐं......

लर०—खैर, इससे कोई सम्बन्ध नहीं। अब यह बतलाइये कि आप रूसमें किस स्थानमें अधिक रहे?

अमे०—पेट्रोग्रेडमें।

लर०—तो आप पुराने रूसी विचारोंके पुरुष होंगे, क्योंकि उन्हीं लोगोंने युद्धके समय सेंटपीटर्सबर्ग नामको बदलकर पेट्रोग्रेड रखा था और वह केवल इसलिये कि वे जर्मन नामतकको घृणाकी दृष्टिसे देखते थे।

अमे०—अवश्य, और ऐसी घृणाकी बात जाननीही चाहिये।

लर०—क्या आपने वहाँ रहकर कोई युद्ध भी देखा है?

अमे०—युद्धके सिवा एक प्रकारसे मैंने और कुछ देखाही नहीं।

लर०—तो जिन अत्याचारोंको आपने देखा है वे युद्धके समय ही हुए होंगे?

अमे०—जी हाँ।

लर०—तो शान्तिके समय बोल्शेविक क्या करते हैं और कैसे रहते हैं यह आप नहीं जानते?

अमे०—नहीं, पर अनुमान कर सकता हूं। इसी प्रकार

लरनीनने उनसे स्वीकार करा लिया कि वे पुराने विचारोंके आदमी हैं और उन्होंने केवल युद्धकालकी अवस्था देखी है। इतना ही नहीं उन्होंने बादमें बातचीत कर यह भी निकलवा लिया कि जब किसी नगरमें युद्ध होता है, तो स्त्रियों, बच्चों और बूढ़ोंको बचाकर गोली चलाना असम्भव है। पुराने विचारोंका दल बोल्शेविकोंकी सहायता नहीं करता, इससे वे लूट मारकर अपना काम साधते हैं। इसके सिवा सबसे मुख्य बात लरनीनने यह भी निकलवा ली कि रूसी द्वेषी अमेरिकन रूसमें रहते हुए भी रूसके समाचारपत्रोंको न पढ़कर अङ्गरेजी पत्रोंको पढ़ा करता था और उनके अनुसार अपने विचार बनाया करता था।

देखा साक्षात्कारी वकीलोंसे कम दांव पेंच नहीं लगाता है। जिस प्रकार वकील प्रतिपक्षीके गवाहसे जिरह करके कुछ-का-कुछ कहलवा लेता है वैसेही साक्षात्कारी भी बात-ही-बातोंमें अपना मतलब गाँठ लेता है।

कोई कोई मनुष्य ऐसे होते हैं .जो साक्षात्कारीको भी छका देते हैं। सन् १९०७ ई० में लाला लाजपतराय माण्डलेकी नज़र बन्दीसे छूटनेके कुछ दिन पीछे जब वे कलकत्ते पहुंचे तब "इङ्गलिशमैन"के संवाददाताने उनसे साक्षात् किया और कई प्रश्न किये, जिनमें यह पूछा था कि नौकरशाही (गवर्मेण्ट) ने आपके साथ कैसा व्यवहार किया ? लालाजीने जवाब दिया कि मैं इस विषय में एक पुस्तक लिख रहा हूं, जिसके अतिरिक्त और कुछ जवाब नहीं दे सकता। बेचारा संवाददाता निराशा होकर चला गया।

अगणित भारतवासियोंके हृदय सम्राट स्वर्गीय लोकमान्य तिलक जब इङ्गलेण्ड पहुँचे तब वहाँके कितने ही समाचार पत्रोंके साक्षात्कारी उनसे मिलने आये। और वे लोग लोकमान्यसे मिलकर अत्यन्त प्रसन्न हुए थे, यदि मैं भूलता नहीं तो उस समय एक मासिक पत्रके किसी अङ्कमें छपा था कि इङ्गलेण्डके किसी साक्षात्कारीने लोकमान्यके सम्बन्धमें लिखा था "इस महा पुरुष के मस्तिष्क में एक विशेषता है कि न मालूम इन्हें यह कैसे सूझ जाती है कि आगे मैं यह प्रश्न करूंगा। जिससे यह पहले ही बिना पूछे उस प्रश्न का उत्तर देदेते है फिर आगे प्रश्न करने की गुञ्जाइश ही नहीं रहती।"

"रिव्यू आव रिव्यूज"के जन्मदाता और मृत सम्पादक मिस्टर डबल्यू० टी० स्टेडने"इन्टरव्यू"की प्रणालीको विशेष उन्नति दी थी। भारतवर्षका जो कोई नेता इङ्गलेण्ड पहुँचता था उसको वे अपने यहाँ निमन्त्रण देते और भारतवर्षीय विषयों पर अनेक प्रश्न करके सम्मति संग्रह करते थे। उनके प्रश्न बड़े मनोरञ्जक होते थे। एकवार सन् १६०८ या ६ ई०में उन्होंने लाला लाजपतरायसे पूछा कि "यदि आप भारतवर्षके वाइसराय हों तो क्या करें" जब लाला लाजपत रायने अपनी स्कीम पेशकी तब हंसकर स्टेड साहब बोले कि "आपकी लाटगिरी (वाइसरायलटी) भारतवर्ष में ब्रिटिश शासन के लिये कब्रस्थान का काम देगी।" इसी प्रकार एक बार (सन् १६०६ ई० में) उन्होंने बाबू (आज कल सर) सुरेन्द्र नाथ बनर्जी से पूछा कि यदि आपको फाँसीकी सजा दी

जाय और शीघ्रही आपका सिर धड़से अलग किया जावे तो बतलाइये आप अपने देशवासियोंकी ओरसे ब्रिटिश जनताको क्या सन्देश देंगे ? इसके उत्तरमें बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जीने पाँच बातें कहीं कि (१) बङ्ग विच्छेद रद्द करदो, (२) निर्वासित देश भक्तोंको छोड़ दो और सन् १८१८ ई०के तीसरे बङ्गाल रेग्यूलेशन को रद्द करो। (३) सभी राजनैतिक कैदियोंके प्रति दया प्रकट .करो (४) भारतवर्षके आदमियों को अपने राजस्व कर (टैक्सों) के नियन्त्रण करनेका अधिकार दो (५) भारतवर्षको केनाडाके ढङ्गका शासन प्रदान करो। बस यह सन्देश देकर मैं खुशीसे फांसी पर चढ़ जाऊँगा।* प्रायः स्टेड साहबके ऐसे प्रश्न हुआ करते थे।

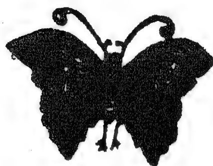
---

* स्टेड साहबने अपने मासिक पत्र "रिव्यू आव रिव्यूज." में इस वार्तालापको छापा और इसपर एक टिप्पणी लिखी थो जिसका निम्न लिखित अंश मनोरञ्जक है :—"Surrender Not" is the nearest English equivalent to the pronounciation of his name, Surendra Nath, I do not think that he is likely to abandon any of the planks in his programme"—इसका भावार्थ यह है कि सुरेन्द्रनाथ शब्दका उच्चारण अङ्गरेजी शब्द "सेरण्डर नोट" "अर्थात् वशमें मत हो") से मिलता जुलता होता है। मै नहीं समझता हूं कि वे अपने किसी कार्यक्रमका परित्याग करेंगे—अर्थात् वशमें होजायेंगे। स्टेड साहब की यह व्यङ्गोक्ति है, जिसका आशय यह है कि बाबू सुरेन्द्रनाथ बेनर्जी सचाईका सदैव पक्ष लेंगे। खेद है कि आजकल स्टेड इस संसारमें नहीं हैं, नहीं तो वे देखते कि जिन सुरेन्द्रनाथके नामका अङ्गरेजीके "Surrender

"इन्टरव्यू अर्थात् साक्षात्का काम बड़ा कठिन है। इन्टरव्यू" को जानेसे पहले खूब सोच लेना चाहिये कि क्या क्या प्रश्न करने हैं?—जिससे बात चीतकी जाय उसके एक एक शब्द पर बहुत ध्यान चाहिये। क्योंकि दफ्तर में पहुंचने पर कोई बताने वाला नहीं रहेगा। साथ ही उस समय खूब अच्छी तरहसे अपने मन में उन प्रश्नों का ध्यान रखियेगा जो तुम्हें आगे पूछने हैं। प्रायः ऐसा समय भी उपस्थित होता है जब बातचीतके नोट्स नहीं लिये जासकते हैं। उस समय जो बात चीत होती है वह स्मरण शक्ति द्वारा ही लिखनी पड़ती है। ऐसी अवस्था में यदि कोई मुख्य बात छूट जाय तो वक्ताका आशय गड़बड़ हो जाता है। रिपोर्टर और संवाददाताओंके पास एक हैंण्ड केमरा जरूर रखना चाहिये। रिपोर्टर और संवाददाताओंको गुप्त सभाओंकी भाँति प्रायः कभी कभी ऐसे व्यक्ति संस्था और दृश्यों के भी फोटो लेने पड़ते हैं, जो सीधी तरहसे नहीं मिल सकते हैं। अमेरिका आदिमें रिपोर्टर और संवाद दाता प्रायः चित्रकारीसे भी परिचित होतेहैं। वे अपने पास एक गुप्त केमराऔर एक बड़ा केमरा रखते हैं। गुप्त केमरासे वे बिना आज्ञा लिये ही चित्र लेलेते हैं। फिर जिसका चित्र लेना होता है उस व्यक्ति से चित्र देने की प्रार्थना करते हैं। यदि उसने स्वीकार कर लिया तो फिर बड़े केमरे से फोटो लेते हैं साक्षात्कारीके पास एक और घड़ी केमरा रहता है, अर्थात् वह

Not"—वशमें मत हो-से मिलता जुलता उच्चारण होता है, वेही Sir Surrender (हूजूर—वशमें हू —होगये हैं।

ऐसा केमरा होता है जिसमें ऊपर तो घड़ी दीखती है पर भीतर केमरा लगा रहता है और साक्षात्कारी घड़ी में चाभी देता हुआ समय पूछता है और तुरन्त चित्र लेलेता है। इङ्गलैण्ड अमेरिका आदि देशोंमें जिससे साक्षात् किया जाताहै उस व्यक्तिका चित्र और संक्षिप्त चरित्र भी समाचार पत्र छापते है। उससे मनुष्यके स्वभाव रुचि लक्ष्य आदि कई बातोंका पता लग जाता है। जब कभी किसी व्यक्ति से साक्षात्कार करने पर उसके मनका भेद नहीं मालूम होता तो जासूस विभाग की सहायतासे काम निकाला जाता है। उससे भी यदि पता न निकला तो उस व्यक्तिके मित्रों और कुटुम्बियों से मिलकर पता लगाया जाता है। यहां यह लिख देना भी आवश्यक है कि प्रायः इङ्गलैण्ड अमेरिकादि देशोंमें संवाद योजक और साक्षात्कारियोंके पास एक ऐसा कार्ड होता है जिसमें प्रधान सम्पादक के दस्खत होते हैं और संवाद योजक तथा साक्षात्कारी के नाम और चित्र भी उसमें होते है।



(१०)

प्रबन्ध सम्बन्धी कुछ बातें ।



कुछ दिन हुए कि इङ्गलैण्डके प्रसिद्ध अखबार नवीस, मि० टी० पी० ओकोनरने कहा था कि वर्त्तमान समयमें पत्रकी सफलता जितनी सम्पादकोंपर निर्भर है उतनीही प्रबन्धकर्त्ताओं-पर भी। अच्छे लेखोंके होते हुए भी, जिस अखबारकी आर्थिक दशा अच्छी नहीं होती है, उसको संसारसे बहुत जल्दी विदा हो जाना पड़ता है। जिस प्रकार सम्पादक अच्छे अच्छे लेख और खबरोंसे समाचारोंको सुसज्जित करनेकी चिन्तामें रहता है वैसे ही मैनेजरको उचित है कि सदैव अखबारकी आर्थिक दशाके सुधारनेकी ओर ध्यान रखे। इङ्गलैण्ड, अमेरिकादि देशोंमें बहुत से समाचारपत्र बोर्ड आव डायरेक्टर्स द्वारा चलाये जाते हैं। मैने-जर इन डायरेक्टरोंसे पत्रकी उन्नति सम्बन्धी बातोंपर परामर्श करता है—वह पत्रकी उन्नतिके सम्बन्धमें डायरेक्टरोंको नयी बातें सुझाता है और उन लोगोंसे पत्र सम्बन्धी अनेक बातें पूछा भी करता है। निदान पत्रका कुल दारमदार मैनेजरपर होता है। जिस तरहसे प्रधान सम्पादक अच्छे अच्छे आदमी सम्पादकीय काम करनेके लिये रखता है, वैसेही मैनेजर भी अपने विभागमें चतुर और शीघ्र काम करनेवाले आदमी रखता है। इङ्गलैण्ड और अमेरिका आदिके दैनिक और साप्ताहिक समाचारपत्रोंको

कई मोटर, बाईसिकल, गाड़ियाँ और घोड़े रखने पड़ते हैं। जिनके द्वारा अनेक स्थानोंपर पत्र पहुंचाया जाता है। इन सब बातोंका प्रबन्ध मैनेजरके हाथमें है। यदि मैनेजरकी निगरानी पूरी नहीं हुई और पत्र रेल शहरमें समयपर न पहुँच सका तो पत्रको हजारों रुपयेकी हानि होसकती है। घोड़ोंकी उसे पूरी रखवारी करनी पड़ती है, क्योंकि उन्हें सारे शहरमें दौड़ना पड़ता है। उसी प्रकार उसे टैक्सी और बाईसिकलोंका भी ध्यान रखना पड़ता है। इसके अतिरिक्त मैनेजरको मशीनके बिगड़ने बनने तथा कागजोंके दाम आदिपर भी ध्यान रखना पड़ता है। हिसाब, किताब, लेन, देनका मुख्य काम मैनेजरके अधीन रहता है। सहकारी मैनेजर, एकाउनटेण्ट और कई क्लर्क प्रवन्धके काम में सहायता देनेके लिये मैनेजरके अधीन रहते हैं।

प्रकाशक—प्रकाशकका कार्य्य भी दायित्व पूर्ण है। कलोंकी सफाई, समाचार पत्रोंकी समय पर छपाई, उन्हें बाहर रेल द्वारा भेजनेके लिये बन्डल बनवाना, उन पर ठीक ठीक पते लगवाना, मोटे मोटे अक्षरोंमें सूची छपवाना इत्यादि काम उसके अधीन होते हैं।

विज्ञापन—प्रबन्धके कामोंमें विज्ञापनोंका लाना और छपाना भी मुख्य काम हैं। पत्रोंके लिये विज्ञापन लानेको बड़े बड़े दलाल रहते हैं। अनेक पत्र अपने विज्ञापन प्रतिनिधि भी रखते हैं। जो समाचार पत्रोंके लिये विज्ञापन लाते हैं। चटकीला भड़कीला विज्ञापन बनाना भी कुछ सहज नहीं है। विज्ञापन सम्बन्धी तीन

बातें स्मरण रखनी चाहिये। सबसे पहले वह सब प्रकारसे चित्ताकर्षक हो, दूसरे जिन विषयोंका विज्ञापन करना हो, उनके सम्बन्धके भाव पाठकोंके मनमें हर प्रकारसे उत्पन्न किये जावें कि पाठक एक बार विज्ञापन पढ़कर बहुत दिन तक याद रखें, जल्दी भूल न जांय। तीसरी बात यह है कि सर्व साधारण का चित्ताकर्षण करते हुए उस विशेष जन समूहका चित्ताकर्षण किया जावे, जिससे विज्ञापन दाताका अधिक सम्बन्ध हो।

विज्ञापन संग्रह करनके भी दो ढङ्ग होते हैं। जैसा ऊपर कहा गया है कि विज्ञापन प्रतिनिधि जगह जगह चक्कर लगाकर विज्ञापन अपने समाचार पत्रोंके लिये इकट्ठे करते हैं। दूसरे अमेरिका और विलायतमें विज्ञापनोंका प्रचार करनेके लिये कितनीही कम्पनियां और एजेन्सियां बनी हुई हैं जो थोड़े मूल्यमें सब प्रकारके विज्ञापनोंका प्रचार करती हैं। प्रचारका कार्य कई प्रकारसे किया जाता है। जैसे बिजलीकी रोशनीके द्वारा ग्रामोफोनके द्वारा ट्राम गाड़ियोंके द्वारा साधारण गाड़ियोंके द्वारा लड़कोंकी टोपियोंके द्वारा गुब्बारोंके द्वारा अखबारोंके द्वारा इत्यादि। ये एजेन्सियाँ अखबारोंको कमीशन पर विज्ञापन देती हैं। विज्ञापनकी भाषाको चटकीला, चटपटा बनानेके लिये भी सीखना पड़ता है। समाचार पत्रोंके कार्य्यालयोंमें विज्ञापन लिखनेके लिये विशेष कर्मचारी नियत किये जाते हैं। वे इस बातका पूरा ध्यान रखते हैं कि विज्ञापनकी भाषा ऐसी मधुर और ललित हो कि जिसको पढ़कर अथवा सुनकर तबीयत फड़क जाय

और विज्ञापन पढ़ने वाले तथा सुनने वालेकी तबीयत दूसरोंको भी उन्हें सुनाने या पढ़ानेकी होजाय। दूसरे इस बातका भी ध्यान रखना चाहिये कि विज्ञापनमें द्व्यर्थक शब्द होनेसे अधिक काल तक स्मरण रहता है तीसरे हास्य जनक शब्दोंका व्यवहार किया जाता है। चौथे, ऐसे विषयोंके साथ सम्बन्ध रहता है जो सर्व साधारणके जीवन से अधिक सम्बन्ध रखें। पांचवें, इस बातपर अवश्य ध्यान रखना पड़ता है कि विज्ञापन विज्ञापित विषयसे कहीं अधिक बढ़ चढ़कर न होने पावें, नहीं तो सर्व साधारण धोखा खाते हैं और निराश होते हैं। भविष्यमें उस वस्तु विशेषकी ओरसे उनका अविश्वास होजाता है। अमेरिकामें कैसे विज्ञापन दिये जाते हैं उनका कुछ थोड़ासा नमूना नीचे जब्बलपुरकी मासिक पत्रिका "श्री शारदा" से उद्धृत किया जाता है:—

भारतवर्षमें:—Trespasser will be prosecuted (यहां चलने वालेका चालान कर दिया जावेगा)

अमेरिकामें :—This is my property as a guest you are welcome (यह मेरी सम्पत्ति है। यदि आप अतिथि हैं तो यहाँ आपका शुभागमन हो सकता है)

भारतवर्षमें: —Spitting strictly prohibited (थूकोमत)

अमेरिकामें:—Ladies do not expectorase in public places why should gentlemen do so ? (सभ्य स्त्रियाँ सार्वजनिक स्थानोंमें नहीं थूकतीं, फिर भद्र पुरुष ही ऐसा क्योंकरें ?)

भारतवर्षमें—keep off the grass (घास पर मत चलो)

अमेरिकामें:—Keep off the grass which would be grass. if you would keep off (होनहार घाससे दूर रहिये, जो कि आपके दूर रहनेसे ही बढ़कर घास होगी ।)

भारतवर्षमें:—Do not make noise. (हल्ला मत करो)

अमेरिकामें:—Silence is the only poultice which heals the blows of sound (मौनही शब्दाघातको आरोग्य करनेकी औषधि है)

ऊपर लिखे हुए उदाहरणोंसे पाठक जान सकते हैं कि कौनसे विज्ञापन अधिक रोचक और प्रभावोत्पादक हैं। कलकत्तेमें रहनेवाले बहुतसे सज्जन अपने मकानोंके ऊपर यह लिख देते हैं; Commit no nuisance here "अर्थात् यहां पेशाब मत करो" एकबार अमेरिकामें भी किसी गृहस्वामीने भी अपने घरके ऊपर यह नौटिस लगा दिया:—Commit no nuisance here अर्थात् "यहाँ पेशाब मत करो।" परन्तु शैतान लड़कोंने No अर्थात् निषेध वाचक शब्दको मिटा दिया। गृहस्वामीको फिर अक़ल खर्च करनेकी जरूरत आपड़ी उन्होंने चालाकीसे उस सूचनाके बाक्यमें कुछ शब्द और जोड़ दिये और उसे बढ़ाकर "Commit nuisance here but facing the road"—

अर्थात् "यहां पेशाब कीजिये परन्तु सड़ककी ओर मुंह करके" ऐसा बना दिया। इस चालाकीसे लड़के सन्तुष्ट हो

गये और अपनी शरारत से बाज़ आगये। सारांश यह है कि विज्ञापनमें चित्ताकर्षण और हास्यरससे बड़ा लाभ होता है।

अमेरिकामें अखबारों की भांति विज्ञापन बाजीभी बहुत बढ़ी हुई है। वहां एक कहावत प्रचलित है कि जो व्यापारी विज्ञापन कलाकी शरण नहीं लेते वे उस मूर्खके समान हैं जो लालटेन लेकर चलता है पर उसे जलाता नहीं। वास्तवमें यह बात सच है, बिना विज्ञापन दिये दूसरेको कैसे पता लग सकता है कि किसके यहां क्या चीज है? यही कारण है कि वहाँके दैनिक समाचार पत्रोंमें २०—२५ पृष्ठ विज्ञापनोंसे भरे होते हैं। परन्तु हमारे देशके समाचार पत्रोंमें सुजाक, गर्मी, प्रमेह आदि बीमारियों की दवाओंके विज्ञापन अधिक होते हैं। महात्मा गान्धीका "यङ्ग इण्डिया" एक ऐसा पत्र है जिसमें किसी प्रकारका विज्ञापन नहीं होता है। यही कारण है कि ग्राहक संख्या अधिक रहने पर भी "यङ्ग इण्डिया" में घाटा रहता है केवल ग्राहकोंके भरोसे ही कोई अखबार अपने पैरोंके बल खड़ा नहीं होसकता है। अखबारोंको विज्ञापनों पर बहुत निर्भर रहना पड़ता है। परन्तु प्रत्येक पत्र सञ्चालकका मुख्य कर्त्तव्य है कि विज्ञापन छापते समय इस बातका ध्यान अवश्य रखे कि कौनसा विज्ञापन छापने योग्य है और कौनसा विज्ञापन छपने योग्य नहीं है। केवल पत्रके लाभकी दृष्टिसे ऐसे विज्ञापन भी नहीं छपने चाहिये जो उसके पाठकोंकी रुचि बिगाड़ने वाले हों। देशी भाषाओंके कितने ही पत्रोंमें कोई कोई ऐसा अश्लील विज्ञापन छप जाता है कि बाप बेटेके सामने

और बेटा बापके सामने पढ़ने में लज्जित होता है। ऐसे अश्लील विज्ञापनोंको कदापि पत्रमें स्थान नहीं देना चाहिये।

जिस प्रकार हमारे यहांके कुछ पत्र सञ्चालक अश्लील विज्ञापन छापनेमें नहीं हिचकते हैं, उसी भांति वे अपने ग्राहकोंसे पत्रके मूल्यका भी कड़ा तकादा करते हैं, उदाहरणके लिये नीचे एक कार्डकी नक़ल प्रकाशित की जाती है जिसको पढ़ कर पाठक स्वयं देख लेंगे कि कार्डके भेजनेवाले, पत्रसञ्चालक महोदयके एक एक वाक्यमें कैसी मधुर शब्दावली है। कैसे कैसे सुन्दर फूलों की वृष्टि होरही है। जिसको पढ़ते ही चित्त प्रफुल्लित हो जाता है। वह यह है:—

"प्रिय जात्याभिमानी महोदय गण!.............के सदा सहायक! क्या हमारा जीवित रहना आपकी जातिके लिये लाभदायक नहीं है? फिर क्यों वी० पी० वापिस कर दिया, हमारी रक्षा करना दाल भातका कौर नहीं कि जो हाथ मारले परमात्माको धन्य है कि हमारे सब ग्राहक जाति प्रेमके नाते वर्ष भरमें १॥) रू० देना हाथका मैल जानते हैं? आपने न जाने कैसे वी० पी० वापिस कर पूर्ण जाति हितैषिता का परिचय दिया है। अतएव सानुरोध प्रार्थना है कि अन्य कार्य्योंमें तो पुरखनकी नाक कटती है? पर × × × × के वन्द हो जानेसे आपकी नाक ऐसी बढ़ जावेगी कि सरग (स्वर्ग?) छूलेगी। अस्तु अगले मासमें फिर दुबारा वी० पी० भेजेंगे यदि आप उसे लेलेंगे तो अपना सहायक समझकर धन्यवाद प्रकाश करेंगे, न

लेनेसे नाम काट देंगे और पत्रमें छाप देंगे"। क्या इस तरहसे भी कहीं ग्राहक बढ़ सकते हैं ? ग्राहक बढ़ानेका सीधा उपाय यह है कि आप अपने पत्रका चित्ताकर्षण शब्दोंमें विज्ञापन दीजिये। यदि पुराने ग्राहकों से मूल्यका तक़ादा करना है तो मीठे शब्दोंमें कीजिये। इस तरहसे धमकी देकर नहीं कि उनका चित्त दुःख जाय। सुना जाता है कि स्वर्गीय पं० प्रताप नारायण मिश्र अपने ग्राहकोंसे बड़े मधुर और हास्यप्रद शब्दोंमें मूल्यका तक़ादा करते थे। पर आज उनकी जाति और उनकी जन्मभूमिके पत्र सभ्यतासे गिरे हुए शब्दोंमें धमकी देकर ग्राहकोंसे मूल्य बसूल करने की आशा करते हैं। पत्र प्रबन्ध सम्बन्धी और भी बहुत सी बातें हैं, जिनके विषयमें यहां विशेष उल्लेख न करके, इतना ही कहना चाहते हैं कि लार्ड नार्थक्लिफ्की सफलताका कारण प्रबन्ध शक्ति ही थी। बिना सङ्गठन किये, कभी किसी कार्यका अच्छी तरहसे सञ्चालन नहीं होता है। विलायती अखबारोंकी बहुत कुछ काया लार्ड नार्थक्लिफ्ने पलटी। पाठकों को यह सुनकर आश्चर्य होगा कि जब लार्डनार्थक्लिफ्ने सन् १८९६ ई० में 'डेलीमेल' निकाला तब कई महीने तक, उन्होंने "डेलीमेल" का एक अङ्क भी दफ्तरसे बाहर नहीं जाने दिया। "डेलीमेल" का पहला अङ्क—१५ वीं फरवरी सन् १८९६ ई० को प्रकाशित हुआ था, पर चौथी मई अर्थात् दो ढाई मासतक, उसका एक भी अङ्क कार्य्यालयसे बाहर नहीं गया। चौथी मई सन् १८९६ ई० को उसका पहला अङ्क सर्व साधारणके सामने आया। यह

अनुमान किया गया कि पहले दिन—"डेलीमेल" की अधिकसे अधिक डेढ़ लाख कापियाँ खपेंगी पर पहले दिन ही ३६७, २१५ कापियां बिकीं। उस समय लण्डनमें एक आनेसे कम कीमत का कोई दैनिक अखबार न था। "डेलीमेल" का मूल्य एक आने की जगह दो पैसा रखा गया। १५ वर्ष पहले लण्डनके पत्र न्यूयार्क और पेरिसके पत्रोंकी ग्राहक संख्या देखकर हसद करते थे पर "डेलीमेल" ने लण्डन की अखबारी दुनियांमें युगान्तर उपस्थित कर दिया। सन् १८९८ ई० में उसकी ग्राहक संख्या चार लाख थी—सन् १८९९ ई० में ५ लाख, बोअर युद्धके समय उसकी ग्राहक संख्या ग्यारह लाख हुई। पिछले महासमरके समय उसकी ग्राहक संख्या ११ लाखसे भी अधिक थी, पर सन् १९१५ ई० में रणनीतिका विरोध करने पर उसकी ग्राहक संख्या कुछ कम होगयी थी। सन् १९२० ई० में उसकी दैनिक बिक्री १२॥ लाख, सन् १९२१ ई०में १३॥ लाख और आज कल १८ लाख है। लण्डन पेरिस और मैंनचस्टरसे उसके तीन संस्करण निकलते हैं सवा करोड़ से लेकर ढ़ाई करोड़ तक काग़ज़की जरूरत पड़ती है बीस वर्ष पहले अमेरिका और स्कान्डीनेवियासे काग़ज़ आता था जङ्गल इतनी तेजीसे साफ होरहे थे कि काग़ज़के मिलनेमें सन्देह था। लार्ड नार्थक्लिफ़्ने न्यूफौलेण्डमें एक्सप्लायर नदी पर कारखाना खोला। जङ्गल शहरमें परिणत होगया। अब उस जङ्गलका क्षेत्र फल १२ वर्ग मील है तीन हजार जन संख्या है। उसका नाम ग्राण्ड फाल्स है। आज कल सालमें ५०००० टनसे

ज्यादा कागज़ लगता हैं। स्याही सालमें ६०००० पौंड अर्थात् ६००००० रूपये की लगती है।

"डेलीमेल"की प्रबन्ध सम्बन्धी सभी बातोंके यहाँ लिखनेका स्थान नहीं हैं। उसके यहाँ समाचार और चित्र संग्रह करनेमें भी कुछ कमी नहीं की जाती है। देशी और विदेशी समाचारोंके लिये उसके यहां हजारों रुपये खर्च होते हैं। चित्र विभाग दिन पर दिन बढ़ता जारहा है। सन् १६०० ई० में इस विभाग में छः चित्रकार थे, आज कल ८० चित्रकार हैं। रातके १२ बजे अथवा एक बजे संसारके किसी बड़े आदमीके गिरफ्तार होने मरने अथवा बीमार होनेकी खबर मिली, कि उसी समय "डेली-मेल" में उसका चित्र और चरित्र प्रकाशित कर दिया जाता है। क्या अच्छा प्रबन्ध है कि "डेलीमेल" के सम्पादकीय विभागके आदमियोंको चित्र विभागका कर्मचारी उसी समय चित्र निकाल कर देदेगा। उसका मोटर विभाग छः लाखका है। ६२ गाड़ियां दिन रात हाजिर रहती हैं। सितम्बर सन् १६१६ ई०में रेलवे की हड़ताल होने पर अपने ग्राहकोंके पास ठीक समय पर पहुंच जाता था। उसकी एक गाड़ी ऐसी है, जिसमें चलते चलते फोटो लिया जाता है। जब उसका ऐसा प्रबन्ध है तबही उसके लाखों ग्राहक हैं। बिना प्रबन्धके चाहे जितने अच्छे लेख क्यों न हों, पत्र कभी नहीं चल सकता है। आजकल "डेलीमेल" के विज्ञापनकी छपाई १५ हजारसे अधिक पड़ती है। भारतवर्षमें अखबारोंको विज्ञापनों द्वारा विशेष लाभ न होनेका कारण यह भी

है कि यहां व्यापार अमेरिका, इङ्गलेण्ड आदिके समान बढ़ा हुआ नहीं है। ग्राहकोंके चन्देसे पत्रका खर्चा चलना मुश्किल होता है। इङ्गलेण्ड अमेरिका आदि देशोंमें व्यापार बढ़ा हुआ है। और कल कारखाने हैं, जिनके बिज्ञापनोंसे वे मालामाल होजाते हैं, और समाचार पत्रोंके व्यवसायमें अच्छा मुनाफा होता है।

———



मुद्रण सम्बन्धी कुछ बातें।



छापेखानेका प्रचार कब कहाँ और कैसे हुआ ?

इस बिषयमें पीछे लिखा जाचुका है। इङ्गलेण्ड अमेरिका आदि देशोंमें अखबारोंकी छपाई पर भी अन्य बातोंके समान ही विशेष ध्यान रखा जाता है। वहांके समाचार पत्रोंके टाईप छपाई, कागज़ सब उत्तम रहते हैं। हमारे देशमें बहुतसे अखबारों का टाईप घिसा होताहै, किसी अखबारमें कागज़ इतना रद्दी लगाया जाता है कि अखबार खोलते खोलते कागज़ फटा जाता है। यह

त वहांके समाचार पत्रोंमें नहीं होती है। वे लोग अपने पत्रको सर्वाङ्ग सुन्दर बनाना मुख्य कर्त्तव्य समझते हैं। पत्रको सर्वाङ्ग सुन्दर बनानेमें किसी प्रकारकी कमी नहीं करते हैं। खबरें, नोट, तार, लेख इत्यादि दूर दूर हैडिङ्ग देकर इस रीतिसे छापते हैं कि जिनसे पाठकोंको हेडिङ्ग देखकर ही ज्ञात होजाय कि कौनसा समाचार पहले पढ़ना चाहिये ? "टाइम्स" पत्रके छापनेमें अमेरिका की खास तरहकी कलें काममें आती हैं ये कलें प्रति घण्टा पचास हजार कापियां निकालती हैं। कभी कभी इनसे भी अधिक। अखबार छपने बाद, कल द्वारा उसकी नत्थी होती जाती हैं। "टाइम्स" में अक्षरोंकी अपेक्षा शब्द कम्पोज

करनेवाली कलें हैं। इससे काम जल्दी होता है। "टाइम्स" मेंही क्यों, प्रायः अमेरिका, इङ्गलेण्ड आदिके सभी बड़े बड़े समाचार पत्रोंके छापनेको ऐसी ही कलें होती हैं कि जो प्रति घण्टा लाखों कापियाँ छाप सकें।



सम्पादक समितिकी आवश्यकता ।



विलायतमें समाचार पत्रोंका बहुत प्रभाव है। वहाँके समाचार पत्रोंकी शक्ति इतनी बढ़ी हुई हैं कि सर्व साधारण तो क्या मन्त्री मण्डल तकको घुमा फिरा सकते हैं। उनमें एकता भी अच्छी है। एक दूसरेकी सहायताके लिये उन्होंने सभाएं बना रखी हैं। इन सभाओंके नियमोंके अनुसार सब सभासदोंको चलना पड़ता है। विपत्तिमें ये सभाएं सम्पादकोंकी अच्छी सहायता करती हैं। सुना जाता है कि इङ्गलेण्डमें पत्र सम्पादकों की स्वत्वरक्षाके लिये अनेक समितियाँ हैं। ये कोरी बातूनी सभाएं नहीं हैं। इन सभाओं द्वारा सम्पादकों और उप सम्पादकोंके वेतनकी दर स्थिर कीजाती है। जो दर नियत होजाती है उससे कम वेतन वहांके पत्र स्वामी अपने सम्पादकको नहीं दे सकते हैं चाहे नियत दर अधिक भले ही हो। सच बात तो यह है कि विलायतके लोग सङ्घ शक्तिके महत्वको खूब पहचानते हैं और हमारे यहाँके लोग विशेषतः हिन्दीवाले "अपनी अपनी डफली और अपना अपना राग" इस कहावतके अनुसार सङ्घ शक्तिसे कोसों दूर भागते हैं। पर अब समय आगया है कि हिन्दी समाचारपत्रोंके सम्पादकोंको "अपनी अपनी डफली और अपना अपना राग" छोड़कर सङ्घ शक्तिके महत्वको पहचानना चाहिये। सन्

१९१५ ई० में "बौम्बे क्रोनिकल"के तत्कालीन सम्पादक मिस्टर हार्नीमैंनके प्रयत्नसे प्रेस एसोसियेशन स्थापित हुआ था। पर तब भी हिन्दी पत्र सम्पादकोंकी आँखें नहीं खुलीं। सच पूछिये तो देशी भाषाके समाचारपत्रोंके सम्पादकोंको अङ्गरेजी भाषाके समाचार पत्रोंके सम्पादकोंसे कहीं अधिक परिश्रम करना पड़ता है। पर अङ्गरेजी पत्र सम्पादकोंको जो वेतन मिलता है, उससे कहीं कम हिन्दी समाचार पत्रोंके सम्पादकोंको वेतन मिलता है। डेढ़ सौ दो सौ से अधिक किसी हिन्दी सम्पादकको शायदही मिलता हो। पाठकोंको यह सुनकर आश्चर्य्य होगा कि थोड़े दिन हुए लण्डनका "डेलीक्रोनिकल" बिका था। उक्त पत्रके नये स्वामीके अधीन उसके सम्पादक मिस्टर जे नाल्ड काम करना नहीं चाहते थे। उनको अलग करते समय उस पत्रके नये स्वामीने उनको छः महीने का वेतन दिया और वेतनके अलावे एक लाख पांच हजार रुपया और भी दिया। कहा जाता है कि उक्त सम्पादक महाशय पत्रके लाभमें कुछ हिस्से पाते थे इसलिये इतनी बड़ी रक़म पासके। दूसरी ओर हिन्दीपत्रोंके ऐसे कुछ "उदार हृदय" स्वामी भी हैं जो अपने सम्पादकोंको पूरा वेतन भी नहीं देना चाहते हैं। ऐसी परिस्थितिमें हिन्दी पत्र सम्पादकोंका कर्त्तव्य है कि वे अपनी सम्पादक समिति बनावें। सम्पादक समितिका प्रस्ताव हिन्दी सम्पादकोंके सामने नया नहीं है, बहुत पुराना है। सन् १८८५ ई०में प्रयागमें हिन्दी सम्पादकोंकी समिति स्थापित हुई थी। "भारत जीवन" के तत्कालीन स्वामी और सम्पादक

स्वर्गीय बाबू रामकृष्ण वर्मा उसके सभापति हुए थे और श्रीयुक्त राधाचरण गोस्वामी उसके मंत्री हुए थे। पर एक वर्षही उक्त सम्पादक समितिकी चर्चा होकर रह गयी। पीछे २२ वर्ष पीछे सन् १६०७ ई० में आराकी नागरी प्रचारिणी सभाके उद्योगसे सम्पादक समिति फिर प्रयागमें श्री बाबू पुरुषोत्तम दास टण्डनके निरीक्षणमें स्थापित हुई थी। सन् १६१० ई० में हिन्दी साहित्य सम्मेलन स्थापित हुआ। उस समय से लेकर सन् १६१३ ई० तक किसी न किसी ढङ्गसे सम्पादक समितिका अधिवेशन हिन्दी साहित्य सम्मेलनके साथ होता रहा, परन्तु सन् १६१४ ई०में लखनऊमें जब हिन्दी साहित्य सम्मेलनका चौथा अधिवेशन हुआ था तब सम्पादक समितिका अधिवेशन हिन्दी पत्र सम्पादकोंकी उदासीनताके कारण नहीं होसका। इस पर एक साप्ताहिक समाचारपत्रने लिखा था—"अच्छा हुआ गङ्गाका बेड़ा गोमतीमें डूब गया"। इसके लिखनेका कारण शायद यही हो कि उस समय हिन्दी समाचारपत्रोंके सम्पादकीय आसनपर कुछ ऐसे लोग थे, जिन्हें सम्पादक कहना, सम्पादक शब्दका हास्य करना था। परन्तु अब यह बात नहीं है। आज कल हिन्दी संसारमें कितने ही सुयोग्य और विद्वान सम्पादक हैं। कितने ही दैनिक पत्रोंका अच्छा बढ़िया सम्पादन होरहा है। ऐसी दशामें हिन्दी सम्पादक समितिका स्थापन न होना समाचार पत्रोंकी उन्नतिमें बाधक है। हिन्दी सम्पादकों को चाहिये कि अब इस उदासीनताको छोड़ें और सङ्घशक्तिके महत्वको समझें।

सम्पादक समितिके अधिवेशनोंमें सम्पादनकला सम्बन्धी विवाद ग्रस्त विषयों पर विचार किया करें। क्या हिन्दी समाचारपत्रोंके सम्पादक इस ओर ध्यान देनेकी कृपा करेंगे?



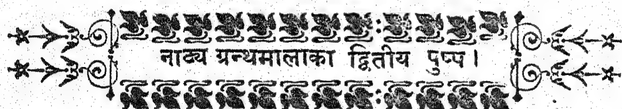
आपके फायदेकी बात।



अगर आप घर बैठे फायदेके साथ-ही-साथ आनन्द लूटना चाहते हैं तो आजही ॥) प्रवेश फीस भेजकर हमारे यहांके स्थाई ग्राहक बन जाइये। हमारे यहांकी प्रकाशित सभी पुस्तकें ग्राहकोंकी पौने मूल्यमें मिलगी। हम आपको सलाह देते हैं कि आप शीघ्र ॥) वा इतनेहीकी टिकटें भेजकर अवश्य ग्राहक बनिये।

(क) पूर्व प्रकाशित पुस्तकोंके लेने या न लेनेका अधिकार स्थाई ग्राहककोंको होगा। किन्तु नव प्रकाशित पुस्तकें उन्हें अवश्य स्वीकार करनी होंगी।

(ख) पुस्तक प्रकाशित होतेही वी० पी० द्वारा भेज दी जायगी। जो सज्जन उसे न छुड़ायेंगे। उनका नाम स्थाई ग्राहकोंकी श्रेणीसे काट दिया जायगा। और अग्रिम शुल्क जप्त कर लिया जायगा।



नाट्य जगतका सचित्र सामयिक श्रृङ्गार।



लेखक—रामसिंह वर्म्मा।

होरही जब बृद्धि वेश्यागामियोंकी इस तरह।
क्यों न फिर तब बृद्धि होगी, वेश्याओंकी हर तरह॥
छोड़कर जो घरकी स्त्री निज कर्मका मारण करें।
फिर क्यों न उनकी नारियां, वेश्या बृत्ति धारण करें॥

नाटक क्या है? वर्त्तमान समयका चित्र दिखानेवाला अद्भुत चमत्कारिक आइना है। इसके हरएक दृश्य आपका चित्त-कर्षित करेंगे और समयानुकूल बिना रुलाये और हँसाये न रहेंगे। यह नाटक बड़ीही सरल और मधुर भाषामें लिखा गया है। प्रत्येक नाटक प्रेमी एवं संस्थाको इसकी एक एक प्रति अवश्य रखनी चाहिये। यदि आप सरस्वतीकी पति-परायणता और स्वामिभक्ति, कमलावतीका धर्म पालन तथा भ्रातृ स्नेह, हीरालाल के वेश्या गमनका नतीजा, दुष्ट अभयचन्द तथा उसके साथियोंका

भीषण अत्याचार और अन्त परिणाम, मुन्ना वेश्याके प्रेम जाल तथा उसके गुप्त विचार, राय भड़चन्द्के ग्रहकी विचित्र कहानी एवं नाटकके नायक रामदासकी कर्त्तव्य परायणता तथा महान आदर्श स्वामि-भक्ति और उसका पुरस्कार देखना चाहते हैं, तो समस्त कार्य्यों को विश्राम दे एकबार इस पुस्तकको अवश्य अवलोकन करें। अनेक रंग बिरंगे चित्रोंसे सुसज्जित पुस्तकका मूल्य १।) रेशमी जिल्द १॥)।

सचित्र राजनैतिक ग्रन्थ

स्वराज्यकी मांग।

इस ग्रन्थमें स्वराज्यके विषयमें देशके बड़े बड़े नेताओंका मत व्यक्त किया गया है। बड़ी बड़ी दलीलों द्वारा सिद्ध किया गया है कि स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है और साथही युक्तियों द्वारा बताया गया है कि हमको स्वराज्य संग्राम किस प्रकार चलाना चाहिये। पुस्तक प्रत्येक देशाभिमानीको अवश्य पढ़नी चाहिये, इस में ८ हाफटोन सुन्दर चित्र भी दिये गये हैं। मूल्य १॥)।

उपन्यास जगतका अमूल्य रत्न।



लेखक—पं० चन्द्रशेखर पाठक।

भारती उपन्यास-जगतका शृंगार, घटनाओंका आगार और सामयिक तथा राजनैतिक उलझनोंको प्रत्यक्ष देखानेवाला बायस्कोप है। भारतीमें पद-पदपर घटनाओंकी जैसी विचित्रता दिखाई देती है, चरित्र-चित्रणका जैसा आदर्श दिखाई देता है, उसी तरह उपदेश भी प्राप्त होता है। यदि राय साहबका गर्व भरा व्यवहार, दिग्विजयकी देशरक्षक पुकार और भारतीकी सेवाभाव भरी मधुर झंकार सुनना चाहते हों, यदि कपटियोंकी कपट नीति, दुराचारियोंकी स्वार्थ भरी भयानक चालें, अधिकारियोंका मान-मद-मर्दन करनेवाले षड़यन्त्रका नमूना देखना चाहते हों अथवा यह जानना चाहते हों कि नारी जीवनका आदर्श क्या है, तो भारती पढ़िये। इसमें आपको सुन्दर निधि दिखाई देगी। इसलिये कहते हैं कि समस्त कार्य्योंको छोड़ प्रथम भारती पढ़िये। सुन्दर एण्टिक कागजपर छपी हुई अनेक ए[illegible] [illegible] बहुरंगे चित्रोंसे सुसज्जित पुस्तकका मूल्य ३) मात्र।

प्रकार जन्म लिया और अपना वर्तमाण रूप किनरक तरह था किया, यह सब बातें भी अच्छी तरहसे दर्शाई गई हैं। इस पुस्तकके पढ़नेसे थोड़ी सी हिन्दी जाननेवाला मनुष्य भी पत्र-सम्पादन कार्य तथा पुस्तकें लिखना और पुस्तकों तथा लेखोंका मर्म पहचानना सीख सकता है। जिन लोगोंको सम्पादक अथवा लेखक बननेका शौक या साहित्य प्रेम हो, वे इस पुस्तकको मंगा करअवश्य पढ़ें, और बारबार पढ़ें। भाषा इतनी सरल तथा रोचक हैं, कि कमसे कम हिन्दी जाननेवाले भी इसे समझ सकते हैं। हम दावेके साथ कह सकते हैं, कि हिन्दीमें इस जोड़की पुस्तक दूसरी नहीं है। बढ़िया अण्टिक कागजपर छपी हुई बड़ी पुस्तक-का दाम सर्व साधारणके सुभीतेके लिये केवल १) रखा गया है।

भक्त तुळसीदास

नाटक

आज भी जिन तुलसीदासके ग्रन्थसे हिन्दी साहित्यका मस्तक ऊँचा हो रहा है। जिनकी रामायण आज भी यह घोषणा कर रही है, कि भारतवर्ष आदर्शकी खान है। गोस्वामी तुलसीदासकी समताका विद्वान आजतक भी किसी साहित्यमें नहीं पाया गया। प्रस्तुत पुस्तकमें उन्हीं महापुरुषका चरित-चित्रण किया गया है। गोस्वामीसे श्रद्धा रखनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको इसकी एक एक प्रति अवश्य मंगाकर रखनी चाहिये। घटिया कागजकी पुस्तकका दाम ॥=) और बढ़ियाका ॥।)

पंजाब हरण

यह सिक्खोंके पतनका इतिहास है। १६ वीं सदीके आरम्भमें सिक्ख साम्राज्य महाराज रणजीतसिंहके प्रतापसे समृद्धशाली होगया था। उनके मरतेही आपसके फूट, वैर, कुचक्र, भीतरीघातें, अंग्रेज़ोंके विश्वासघातसे उसका किस प्रकार पतन हुआ। जो अंग्रेज़ जाति सभ्यताकी हामी भरती है, मैत्रीकी डींग हाँकती है, उसने अपने परम प्रिय मित्र महाराज रणजीतसिंहके परिवारके साथ किस घातक नीतिका व्यवहार किया इसका वास्तविक दिग्दर्शन इस पुस्तकसे होता है। इससे अंग्रेजोंके सच्चे पराक्रमका भी पूरा पता चलता है। जो अंग्रेज जाति आज गली गली ढिंढोरे पीट रही है कि "हमने भारतको तलवारके बल जीता है" उसके सारे पराक्रम चिलियानवालाके युद्धमें लुप्त होगये थे और यदि सिक्खोंने मिलकर एकबार उसी प्रकार और हराया होता तो शायद ये लोग डेराडण्डा लेकर कूचही कर गये होते। पुस्तक बड़े खोजसे लिखी गई है। सुन्दर मोटे एण्टिक कागजपर सचित्र २५० पृष्ठोंकी पुस्तकका मूल्य केवल २)

लव-कुश

इस ग्रन्थमें भगवान् रामचन्द्रके दोनों विश्व-विजयी पुत्र लव और कुशका पवित्र वृत्तान्त दिया गया है। साथही रंग बिरंगे १२ चित्र देकर पुस्तककी शोभा बढ़ा दी गई है। मूल्य १॥) रंगीन जिल्द २) रेशमी जिल्द २।)।

दानवी लीला

(एक अद्भुत जासूसी उपन्यास)

यदि आपको जासूसी पुस्तकें पढ़नेका कुछ भी शौक हो तो यह उपन्यास मंगाकर अवश्य पढ़िये । इस उपन्यासमें चरित चित्रणका अच्छा फोटो खींचा गया है । इसमें जासूसोंकी चालाकी तथा हुनर देखकर आप चकित होंगे और किस्सेकी गढ़न्त तथा दिलचस्पीकी आप प्रशंसा करेंगे । इस ढङ्गका जासूसी उपन्यास आजतक कोई नहीं छपा । दाम भी सर्व साधारणके सुभीतेके लिये केवल १।) रखा गया है ।

कृष्णावसना सुन्दरी

यह जासूसी उपन्यास ऐतिहासिक घटनाको लेकर लिखा गया है । अगर आपको जासूसोंकी चालाकी फुरती और गम्भीरपन देखना हो तो इसमें देखिये । जासूस रणधीरसिंहकी काररवाई देखकर आपको चकित होना पड़ेगा, कृष्णवसना सुन्दरीकी चालाकी पढ़कर वाह वाह करने लग जायगे । किस्सा बड़ा ही दिलचस्प है । दाम केवल १) ।

सत्यनारायण

भगवान् सत्यनारायणकी पूरी कथा इस पुस्तकमें नाटकके रूपमें बड़ी खूबीके साथ दर्शाई गई है । साथ ही साथ सामयिक और राजनैतिक दृश्य भी खूबीके साथ दिखाये गये हैं । सचित्र पुस्तकका मूल्य १।) रेशमी जिल्द १॥।) ।

मारवाड़ी राष्ट्रीय गीत

अर्थात् गांधीजीको गीत

जिस पुस्तकके लिये मारवाड़ी महिलायें सालोंसे लालायित थीं, जिस पुस्तकके लिये स्त्रियोंका पतियोंसे, माताओंका पुत्रोंसे तथा बहिनोंका भ्राताओंसे सख्त तगादा था, वही मशहूर मारवाड़ी राष्ट्रीय गीत, जिसमें चर्खा, स्वदेशी आदि राष्ट्रीय गीतोंके अलावा सीता जीका वर्णना, सुदामाजीका गीत, श्रावणका गीत आदि धार्मिक गाने भी हैं, जिन्हें पढ़ और सुन महिलाओंका मन आनन्दसे नाच उठेगा। मूल्य दो भागोंका ।)

हेमलता

यह भी ऐय्यारी और तिलिस्मका बहुत बढ़िया उपन्यास है। इसकी लिखावट बड़ी ही लच्छेदार है। ज्यों ज्यों पढ़ते जाइये त्यों त्यों ताज्जुबके समुद्रमें गोते लगाने पड़ते हैं। पुस्तक पढ़नी शुरू करके बीचमें छोड़ देना मनुष्यकी शक्तिके बाहर हो जाता है। दाम दो भागोंका १॥) रेशमी जिल्द २)।

भक्त चंद्रहास

यह नाटक पौराणिक, राजनैतिक, धार्मिक और सामयिक घटनाओंसे भरा हुआ है। जिस समय यह रङ्ग मञ्च पर अभिनीत होता है जनता चित्रवत हो जाती है। सचित्र पुस्तकका मूल्य १) रङ्गीन १॥) और रेशमी जिल्द १॥।)।

सत्याग्रही प्रहलाद

यह नाटक सत्याग्रहका जीता जागता चित्र है। भक्त प्रहलादने किस तरह सत्याग्रह द्वारा दमन नीति पर विजय प्राप्त की थी। यह बात इस नाटकके पढ़नेसे भली भांति विदित हो जायगी। इसकी सफलता पर लेखकको ५००) रु० पुरस्कार भी मिल चुका है। सचित्र पुस्तकका मूल्य १) रेशमी जिल्द १॥)।

सम्राट् परीक्षित

इस नाटकमें सम्राट् परीक्षितके जन्म होनेका कारण और जन्मके समयकी धारणा, बड़े ही आकर्षक और हृदय विदारक दृश्य, कलियुगका धर्म और पृथ्वीको सताना, परीक्षितका उनकी सहायता कर कलियुगके साथ घोर युद्ध करना, इसके अतिरिक्त सभी घटनायें बड़ी खूबीके साथ लिखी गई है। सचित्र पुस्तकका मूल्य १।) रेशमी जिल्द १॥।)।

पंजाबका

भीषण हत्याकाण्ड

इस ग्रन्थमें पंजाबके मार्शललाका पूरा हाल लिखा गया है। पंजाबमें जनरल डायरने कैसे पैशाचिक काम किये थे और हमारे भाइयोंको किस प्रकार विपदका सामना करना पड़ा था यह सब बात आपको इस ग्रन्थके पढ़नेसे मालूम होंगी। इसमें २५ चित्र भी दिये गये हैं। मूल्य १॥।) रंगीन जिल्द २) रेशमी जिल्द २॥)।

सती शर्मिष्ठा

यदि आप जीवन चरित्रके साथही साथ उपन्यासका भी आनन्द लूटना चाहते हैं तो शीघ्र हमारे यहाँसे शर्मिष्ठा मंगाकर पढ़िये। पुस्तक क्या है! राज-भक्ति और पितृ-भक्तिका नगीना है। शर्मिष्ठाकी कर्त्तव्य परायणता, देवयानीका गर्वभरा व्योहार, बृहस्पतिके पुत्र "अज"की कार्य्य कुशलता तथा दैत्योंके गुरू शुक्राचार्य्यकी "मृत सञ्जीवनी"का अद्भुत चमत्कार देखना चाहते हैं तो बिना कुछ सोचे विचारे इसे जल्द मँगाकर पढ़नेका कष्ट करें। अनेक रंग बिरंगे चित्रोंसे सुसज्जित पुस्तकका मूल्य केवल ॥)।

अंग्रेजी शिक्षक।

इस पुस्तकके सहारे हिन्दी पढ़ा हुआ आदमी बिना उस्तादकी सहायताके अङ्गरेजी सीख सकता है। हर एक आदमीको इस समय अङ्गरेजी भाषा सीखनेकी सख्त दरकार है। बिना अङ्गरेजी पढ़ा आदमी बहुत जगह अपमानित तक होजाता है। इसके अलावा अपने छोटे छोटे कामोंके लिये (जैसे चिट्ठी लिखना, रजिस्टरी लिखना, मनीआर्डर लिखना, चिट्ठीपर सरनामा करना आदिमें) दूसरोंकी खुशामद करनी पड़ती हैं। इन्हीं सब दिक्कतोंको देखकर हम लोगोंने अङ्गरेजी सीखनेकी यह सरल पुस्तक तैयार की है। यह पुस्तक व्यापारियोंके बड़े कामकी है। इसे पढ़कर आप अङ्गरेजीका सब काम अपने हाथसे कर सकेंगे। दाम पहला भाग ॥।)

मारवाड़ी गीत

इस पुस्तकमें मारवाड़ीं बोलीके हर समय तथा हर मौसिममें गाने योग्य अच्छे अच्छे गीत लिखे गये हैं। मारवाड़ी स्त्रियां इस पुस्तकको बहुतही पसन्द करती हैं और इसमेंके गीतोंको बहुतही लटक तथा प्रसन्नतासे गाती हैं। विवाह शादीके समयके जैसे गीत इस पुस्तकमें हैं वैसे किसी दूसरी पुस्तकमें नहीं मिलते। इस पुस्तकको पढ़नेसे मनुष्य कितनीही चिन्तामें क्यों न हो एकबार अवश्यही हँस देगा। यह पुस्तक छः भागोंमें समाप्त हुई है। दाम प्रति भाग ।) छः भागोंकी सुन्दर जिल्ददार पुस्तकका मूल्य १॥)

आदर्श महिला।

यह पुस्तक भी अपने ढङ्गकी एकही है। इसके पढ़नेसे पुरुष बच्चे सभी शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। इसमें डाकृर रामनाथका कुसङ्गतमें पड़कर वेश्याके प्रेम जालमें फँस जाना और शराब आदि दूषित पदार्थोंका सेवन करना तथा अपनी सब सम्पत्ति नष्ट करके खून एवं जालके मुकद्दमेमें फँस जाना, अपना पतिव्रता स्त्रीके प्रभावसे सब दूषित कर्मोंको छोड़कर सुमार्गमें आ जाना, अपने कामोंमें मन लगाना तथा अगाध सम्पत्ति पैदा करना आदि बातें ऐसी खूबीके साथ लिखी गई हैं कि इस पुस्तकको पढ़नेवाला कोई भी बिना तारीफ किये नहीं रह सकता। इसके पढ़नेसे आप जान सकेंगे कि अच्छी शिक्षा पाई हुई स्त्रियां अपने पतिको किस प्रकार वशमें कर सकती हैं और वह परिवार कैसा सुखी जिसमेंहोता हैअच्छी समझदार स्त्रियां होती हैं। दाम १)।

पृथ्वीराज

भारतके अन्तिम हिन्दू सम्राट पृथ्वीराजका शहाबुद्दीन गोरीसे अनेकों बार युद्ध, मेवाड़ विजय, सारुण्डाका भीषण समर, आबू पर्वतका भयानक युद्ध, प्रथाकुमारी तथा समरसिंहका विलक्षण प्रेम, जयचन्दका हठ, राजसूययज्ञसे संयोगिताका गायब हो जाना, आल्हा, उदलकी बिलक्षण वीरता आदि कितनीही घटनायें सप्रमाण लिखी गई हैं। इसमें तीन चित्र भी दिये गये हैं। दाम १।)।

नैपोलियन-बोनापार्ट

ऐसा कौन पढ़ा लिखा मनुष्य होगा जो यूरोपके साक्षात रण देवता सर्व मान्य महावीर नैपोलियन बोनापार्टका नाम न जानता है? इसकी वीरताका दबदबा उस समय सारे यूरोपमें था। इस महान पराक्रमशाली वीरने जर्मनी, प्रशिया, आस्ट्रिया, रूस, इटाली आदि महान राज्योंको जीत, अपनी अपूर्व प्रतिभाका परिचय दिया था। इसके डरसे यूरोपके अत्याचारी राष्ट्र थर थर काँपा करते थे। यदि आप इस महान वीरका सम्पूर्ण जीवन वृत्तान्त जानना चाहते हैं तो शीघ्रही इस ग्रन्थको मंगाकर पढ़िये। इस ग्रन्थमें नैपोलियन बोनापार्टका पूरा वृत्तान्त बड़ीही रोचक और मधुर भाषामें लिखा गया है। साथही ११ मन-हरण चित्र लगा ग्रन्थकी शोभा हद दर्जे तक पहुंचा देनेकी चेष्टा की गई है। इसकी उपयोगिता इसीसे जानी जा सकती है कि, अल्पही समयमें इसके दो संस्करण बिक चुके हैं। मूल्य २।) रे॰ जिल्द २॥)।

वारांगना रहस्य

वेश्याओंके समस्त भेद, उनकी पुरुषोंके फँसानेकी सब चाल, हाव भाव कटाक्षका पूरा पूरा मतलब, कितने प्रकारकी वेश्यायें होती हैं, सती साध्वी स्त्रियाँ और वेश्याओंके चरित्रमें कितना अन्तर रहता है, वृद्ध वेश्यायें कौन कौनसे भयानक कार्य्य करती हैं। आदि घटनायें सप्रमाण लिखी गई हैं। मूल्य ६ भागका ७॥)।

आदर्श माता।

यह एक समायिक उपन्यास है। पतित सु
मन्त्र, हिन्दू समाज की कुरीतियां, दुष्टों की दुष्ट
परिणाम तथा समाजिक त्रुटियोंका ऐसे मर्
भाषामें चित्र खींचा गया है, कि आप पढ़कर चकि
जांयेगे। पुस्त . क्या है वर्तमान दशा का सच्चा चित्र है।

पुस्तक एक बार हाथमें लेने पशचात् छोड़नेको जी नहीं चाहता, कहना व्यर्थ न होगा कि हिन्दी संसारमें यह पुस्तक अपने ढंगकी निराली ही है। सर्वसाधारणके सुभीतेके लिये मूल्य भी सिर्फ ॥।) है। साथ ही अनेक रंग विरंगे चित्रोंसे पुस्तककी शोभा अत्याधिक बढ़ा दी गई हैं।